उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—३ अक्टूबर—१९८४ अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
द्वैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

शंकराचार्य के एक शिष्य था। वह कई दिनों से उनकी सेवा कर रहा था पर आचार्य ने उसे अब तक एक भी उपदेश नहीं दिया था। एक दिन शंकराचार्य आसन पर बैठे हुए थे, ऐसे समय किसी के आने की आहट हुई। आचार्य ने पूछा, "कौन है ?" शिष्य बोला, "मैं"। तब आचार्य बोले, "मैं" यदि तुझे इतना ही प्रिय है तो उसे और बढ़ा ले (अर्थात् 'सारा जगत् मैं ही हूँ, यह धारणा कर ले), नहीं तो फिर उसे पूरी तरह त्याग दे।"

(२)

ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। एक को मानने से दूसरे को भी मानना पड़ता है। जैसे अग्नि और दहन-शक्ति—दहन-शक्ति के सिवा अग्नि को सोचा नहीं जा सकता; वैसे ही, सूर्य को छोड़कर सूर्य की किरणों को सोचा नहीं जा सकता और सूर्य की किरणों को छोड़ सूर्य को नहीं सोचा जा सकता। दूध को छोड़कर दूध के धवलत्व का विचार नहीं किया जा सकता; फिर दूध के धवलत्व के बिना दूध का विचार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, ब्रह्म को छोड़ शक्ति को और शक्ति को छोड़ ब्रह्म को नहीं सोचा जा सकता।

(३)

चिड़िया के घोंसले को यदि नष्ट कर दिया जाय तो वह उड़ती हुई आकाश का आश्रय लेती है। इसी प्रकार, यदि देह और जगत् का बोध चला जाए तो जीवात्मा मानो परमात्मा-रूपी आकाश में उड़ जाता है—समाधिमग्न हो जाता है।

(४)

भले घर की स्त्रियों को देखते समय लगता है कि मेरी सच्चिदानंदमयी माँ घूँघट काढ़े सती सजी हुई है; फिर जब मछुआ बाजार की कसबिनों को निर्लज्ज की तरह सज-धजकर बारामदे में खड़े-खड़े हुक्का पीते हुए देखता हूँ तब भी यही लगता है कि सच्चिदानन्दमयी माँ ही छिनाल बनकर और एक किस्म का खेल खेल रही है।

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥१॥
भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः प्रपन्नः प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः ।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहम् । गतिस्त्वं० ॥२॥
न जानामि दानं न च ध्यानयोगं न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम् ।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगम् । गतिस्त्वं० ॥३॥
न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित् ।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातर्गतिस्त्वं० ॥४॥
कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः कुलाचारहीनः कदाचारलीनः ।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहम् । गतिस्त्वं० ॥५॥
प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित् ।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये । गतिस्त्वं० ॥६॥
विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये ।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि । गतिस्त्वं० ॥७॥
अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहम् । गतिस्त्वं० ॥८॥
इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम् ।

हे भवानि ! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है, हे देवि ! एक मात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥१॥ मैं अपार भवसागर में पड़ा हुआ हूँ, महान् दुःखोंसे भयभीत हूँ, कामी, लोभी, मतवाला तथा घृणायोग्य संसार के बन्धनों में बँधा हुआ हूँ, हे भवानि ! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥२॥ हे देवि ! मैं न तो दान देना जानता हूँ और न ध्यान मार्ग का ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र-मन्त्रोंका भी मुझे ज्ञान नहीं, पूजा तथा न्याय आदि की क्रियाओं से तो मैं एकदम कोरा हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥३॥ न पुण्य जानता हूँ न तीर्थ, न मुक्ति का पता है न लयका । हे मातः ! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि ! अब केवल तुम्हीं मेरा सहारा हो ॥४॥ मैं कुकर्मी, बुरी संगति में रहनेवाला दुर्बुद्धि, दुष्टदास, कुलोचित सदाचारसे हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूँ, हे भवानी ! मुझे अधमकी एकमात्र तुम्हीं गति हो ॥५॥ मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवताको नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि ! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥६॥ हे शरण्ये ! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओं के मध्य में सदा ही मेरी रक्षा करो हे भवानि ! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥७॥ हे भवानि ! मैं सदा से ही अनाथ, दरिद्र, जरा-जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूँगा, विपद्ग्रस्त और नष्ट हूँ, अब तुम्हीं एकमात्र मेरी गति हो ॥८॥

प्रार्थना

—स्वामी अद्भुतानन्दजी महाराज

[भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज (लाटू महाराज) के उपदेशों का संकलन 'उद्बोधन' कार्यालय, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'सत्कथा' नामक ग्रंथ में, स्वामी सिद्धानन्दजी महाराज ने किया है। इसमें से कतिपय अंश साभार गृहीत एवं अनूदित करके प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अनुवादक हैं, रामकृष्ण मिशन, रांची के ब्रह्मचारी शंभुचैतन्य।—सं०]

ठीक-ठीक प्रार्थना करने से वे ही खींच लेते हैं। वे (श्रीरामकृष्णदेव) मुझे एवं राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) को प्रार्थना करने के लिए कहते थे। प्रार्थना करने से समझ में आ जाता है—भगवान् ही सत्य हैं, संसार मिथ्या। भगवान् चाहते हैं—पवित्र जीवन। पवित्र जीवन का मूल्य वे समझते हैं।

* * *

जो भगवान् को पुकारता है, भक्ति करता है, उनके शरणागत होता है—वही बुद्धिमान है। उनको आन्तरिकता से अपनी अवस्था बताओ, वे ही सब ठीक कर देंगे। उनको जानने की इच्छा होने पर वे ही कृपापूर्वक बता देंगे।

* * *

गुरु के पास, भगवान के पास, कामक्रोधादि के दमन के लिए खूब-प्रार्थना करनी चाहिए। गुरु को भगवान मानने से ही काम हो जाएगा।

* * *

उनसे अपना दुःख क्यों नहीं कहोगे ? संसार में तो उन्होंने ही रखा है। उनके संसार के लिए परिश्रम कर रहे हो, ऐसा सोचना। उनको अपना दुःख बतलाने में दोष क्या है ?

* * *

संध्या के समय निश्चिन्त होकर बैठकर भगवान् का नाम लेना चाहिए। उनके पास संसार-दुःख के निवारण के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

* * *

संसार में स्त्री-पुत्र, धन-दौलत इत्यादि होते हुए भी जिसे भगवान् के अभाव का बोध होता है, वही भाग्यवान है। जो अभाव का बोध करता है, वही भगवान् को पुकारता है। इस संसार में सभी साधारण देह-सुख को लेकर ही सब व्यस्त हैं। जितना भगवान् को पुकारा जाय उतना ही अच्छा।

* * *

भगवान् को ठीक-ठीक पुकारने से वे बाधा-विघ्न सब काट देते हैं—कर्मफल तक काट देते हैं। वे सृष्टि कर्ता हैं। इच्छा होनेपर वे क्या नहीं कर सकते ?

x x x

जब जन्म हुआ है—तब सुख-दुख तो लगा ही हुआ है। फिर भी, उसी के बीच में जितना हो सके भगवान् का नाम लेना अच्छा है। बैठे-बैठे 'हा दुःख !' 'हा दुःख' करने से ही क्या दुःख दूर होगा ? कर्म करना चाहिए, उनको खूब पुकारना चाहिए। उनकी दया होने पर सब दुःख दूर हो जाता है।

x x x

यदि तुम रो सको तो जानूँ। पवित्र बनो, तब सब समझ सकोगे। उनके पास प्रार्थना करो—पवित्र होने की शक्ति दो।" उनकी दया होने से सबकुछ हो जाएगा। वे यदि पवित्र होने की शक्ति न दें तो कोई पवित्र नहीं बन सकता। पवित्रता, पवित्रता, पवित्रता—जप करो।

x x x

दुर्गापूजा और कालीपूजा के अवसर पर : सौ साल पूर्व

—श्री 'म'

[श्री 'म' कृत और कवि निराला द्वारा अनूदित श्रीरामकृष्ण वचनामृत, द्वितीय खंड से—सं०]

दुर्गापूजा में श्रीरामकृष्ण

आज रविवार, महाष्टमी है, २८ सितम्बर, १८८४ श्रीरामकृष्ण देवी-प्रतिमा के दर्शन के लिए कलकत्ता आये हुए हैं। अधर के यहाँ शारदीय दुर्गोत्सव हो रहा है। श्रीरामकृष्ण का तीनों दिन न्योता है। अधर के यहाँ प्रतिमादर्शन करने के पहले आप राम के घर जा रहे हैं। विजय, केदार, राम, सुरेन्दर. चुनीलाल, नरेन्द्र, निरंजन, नारायण, हरीश, बाबूराम, मास्टर आदि बहुत भक्त साथ में हैं; बलराम और राखाल आभी वृन्दावन में हैं।

श्रीरामकृष्ण—(विजय और केदार को देखकर, सहास्य)—आज अच्छा मेल है। दोनों एक ही भाव के भावुक हैं ! (विजय से) क्यों जी शिवनाथ की क्या खबर है ? क्या तुमने—

विजय—जी हाँ, उन्होंने सुना है। मेरे साथ तो मुलाकात नहीं हुई परन्तु मैंने खबर भेजी थी और उन्होंने सुना भी है।

श्रीरामकृष्ण शिवनाथ के यहाँ गये थे, उनसे मुलाकात करने के लिए, परन्तु मुलाकात नहीं हुई। बाद में विजय ने खबर भेजी थी; परन्तु शिवनाथ को काम से फुरसत नहीं मिली, इसलिए आज भी नहीं मिल सके।

श्रीरामकृष्ण—(विजय आदि से)–मन में चार वासनाएँ उठी हैं।

"बैंगन की रसदार तरकारी खाऊँगा। शिवनाथ से मिलूँगा। हरिनाम की माला लाकर भक्तगण जप करें, मैं देखूँगा और आठ आने का कारण(शराब) अष्टमी के दिन तान्त्रिक साधक पीयेगा, मैं देखकर प्रणाम करूँगा।"

नरेन्द्र सामने बैठे हुए थे। उनकी उम्र २२-२३ की होगी। ये बातें कहते-कहते श्रीरामकृष्ण की नरेन्द्र पर दृष्टि पड़ी। श्रीरामकृष्ण खड़े होकर समाधिमग्न हो गये। नरेन्द्र के घुटने पर एक पैर बढ़ाकर उसी भाव से खड़े हैं। बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं है, आँखों की पलक नहीं गिर रही है।

बड़ी देर बाद समाधि भंग हुई। अब भी आनन्द का नशा नहीं उतरा है। श्रीरामकृष्ण आप ही आप बातचीत कर रहे हैं। भावस्थ होकर नाम जप रहे हैं। कहते हैं—

"सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द ! कहूँ ? नहीं आज तू कारणानन्ददायिनी है—कारणानन्दमयी। सा रे ग म प ध नि। नि में रहना अच्छा नहीं। बड़ी देर तक रहा नहीं जाता। एक स्वर नीचे रहूँगा।

"स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। महाकारण में जाने पर चुप है। वहाँ बातचीत नहीं हो सकती।

"ईश्वरकोटि महाकारण में पहुँचकर लौट सकते हैं। वे ऊपर चढ़ते हैं, फिर नीचे भी आ सकते हैं।

अवतार आदि ईश्वर कोटि हैं। वे ऊपर भी चढ़ते हैं और नीचे भी आ सकते हैं। छत के ऊपर चढ़कर, फिर सीढ़ी से उतरकर नीचे चल-फिर सकते हैं। अनुलोम और विलोम। सात मंजला मकान है, किसी की पहुंच बाहर के फाटक तक ही होती है, और जो राजा का लड़का है, उसका तो वह अपना ही मकान है, वह सातों मंजिल पर घूम-फिर सकता है। एक एक तरह के अनार हैं। एक खास प्रकार है, जिसमें थोड़ी देर-तो एक तरह की फुलझड़ियाँ होती हैं, फिर-कुछ देर बन्द रहकर दूसरे तरह के फूल निकलने लगते हैं। फिर और किसी तरह के फूल, मानो फुलझड़ियों का खटना बन्द ही नहीं होता।

"एक तरह के अनार और हैं। आग लगाने से थोड़ी ही देर के बाद वह भुस्स से फूट जाते हैं। उसी तरह बहुत प्रयत्न करके साधारण आदमी अगर ऊपर चला भी जाता है तो फिर वह लौटकर खबर नहीं देता। जीव कोटि के जो हैं, बहुत प्रयत्न करने पर उन्हें समाधि हो सकती है, परन्तु समाधि के बाद न वे नीचे उतर सकते हैं और न उतरकर खबर ही दे सकते हैं।

"एक हैं नित्यसिद्ध की तरह। वे जन्म से ही ईश्वर की चाह रखते हैं, संसार की कोई चीज उन्हें अच्छी नहीं लगती। वेदों में होमापक्षी की कथा है। यह चिड़िया आकाश में बहुत ऊंचे पर रहती है। वहीं वह अण्डे भी देती है। इतनी ऊँचाई पर रहती है कि अण्डा बहुत दिनों तक लगातार गिरता रहता है। गिरते-गिरते अण्डा फूट जाता है। तब बच्चा गिरता रहता है। बहुत दिनों तक लगातार गिरता रहता है। गिरते ही गिरते उसकी आँखें भी खुल जाती हैं। जब मिट्टी के समीप पहुँच जाता है, तब उसे ज्ञान होता है। तब वह समझ लेता है कि देह में मिट्टी के छू जाने से ही जान जायगी। तब वह चीख मारकर अपनी माँ की ओर उड़ने लगता है। मिट्टी से मृत्यु होगी, इसलिए मिट्टी देखकर भय हुआ है। अब अपनी माँ को चाहता है। माँ उस ऊँचे आकाश में है। उसी ओर बेतहाशा उड़ने लगता है, फिर दूसरी ओर दृष्टि नहीं जाती!

अवतारों के साथ जो आते हैं, वे नित्यसिद्ध होते है, कोई अन्तिम जन्म वाले होते हैं।

(विजय से)—"तुम लोगों का दोनों ही है, योग भी है और भोग भी। जनक राजा को योग भी था और भोग भी था। इसीलिए उन्हें लोग राजर्षि कहते हैं। राजा और ऋषि दोनों ही। नारद देवर्षि हैं और शुकदेव ब्रह्मर्षि।

"शुकदेव ब्रह्मर्षि हैं, शुकदेव ज्ञानी नहीं, पुञ्जीकृत ज्ञान की मूर्ति है। ज्ञानी किसे कहते हैं? जिसे प्रयत्न करके ज्ञान हुआ है। शुकदेव ज्ञान की मूर्ति हैं, अर्थात् ज्ञान की जमायी हुई राशि हैं। यह ऐसे ही हुआ है, साधना करके नहीं।"

बातें कहते हुए श्रीरामकृष्ण की साधारण दशा हो गयी है। अब भक्तों से बातचीत कर सकेंगे।

केदार से उन्होंने संगीत गाने के लिए कहा। केदार गा रहे हैं। उन्होंने कई गाने गाये। एक का भाव नीचे दिया जाता है—

"देह में गौरांग के प्रेम की तरंगे लगा रही हैं। उनकी हिलोरों में दुष्टों की दुष्टता बह जाती है। यह ब्रह्माण्ड तलातल को पहुंच जाता है। जी में आता हैं, डूबकर नीचे बैठ रहूँ परन्तु वहाँ भी गौरांग-प्रेम-रूपी घड़ियाल से जी नहीं बचता, वह निगल जाता है। ऐसा सहानुभूति पूर्ण और कौन है, जो हाथ पकड़कर खींच ले जाय।"

गाना हो जाने पर श्रीरामकृष्ण फिर भक्तों से बातचीत कर रहे हैं। श्रीयुत केशव सेन के भतीजे नन्दलाल वहाँ मौजूद थे। वे अपने दो-एक ब्राह्मभक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण के पास ही बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण(विजय आदि भक्तों से)—कारण

(शराब) की बोतल एक आदमी ले आया था, मैं छूने गया, पर मुझसे छुई न गयी।

विजय—अहा !

श्रीरामकृष्ण—सहजानन्द के होने पर यों ही नशा हो जाता है शराब पीनी नहीं पड़ती। माँ का चरणामृत देखकर मुझे नशा हो जाता है, ठीक उतना जितना पाँच बोतल शराब पीने से होता है।

कालीपूजा में श्रीरामकृष्ण

आज काली-पूजा है, शनिवार, १८ अक्टूबर, १८८४ ई०। रात के दस ग्यारह बजे से काली-पूजा शुरू होगी। कुछ लोग इस गम्भीर अमावस की रात में श्री रामकृष्ण के दर्शन करेंगे। इसलिए वे कदम बढ़ाये चले आ रहे हैं।

रात आठ बजे के लगभग मास्टर अकेले आ पहुँचे। बगीचे में आकर उन्होंने देखा, काली-मन्दिर की पूजा आरम्भ हो चुकी है। बगीचे में कहीं कहीं दीपक जलाये गये थे और काली-मन्दिर में तो रोशनी ही रोशनी दीख पड़ती है। बीच बीच में शहनाई भी बज रही है। कर्मचारीगण दौड़-दौड़कर इधर उधर देख-रेख कर रहे हैं। आज रानी रासमणि के काली-मन्दिर में बड़े समारोह के साथ पूजा होगी। दक्षिणेश्वर के आदमियों को यह सूचना पहले ही मिल चुकी थी। अन्त में नाटक होगा यह भी वे लोग सुन चुके हैं। गाँव से लड़के, जवान, बूढ़े और स्त्रियाँ सब देवी-दर्शन के लिए चले आ रहे हैं।

दिन के पिछले पहर चण्डी-गीत हो रहा था, गवैये थे राजनारायण। श्री रामकृष्ण ने भक्तों के साथ बड़े प्रेम से गाना सुना। देवी की पूजा की याद कर श्री रामकृष्ण को अपार आनंद हो रहा है।

रात के आठ बजे वहाँ पहुँचकर मास्टर ने देखा, श्री रामकृष्ण छोटी खाट पर बैठे हुए हैं, उन्हें सामने करके कई भक्त जमीन पर बैठे हैं—बाबूराम, छोटे गोपाल, हरिपद, किशोरी, निरंजन के एक आत्मीय नवयुवक और ऐंड़ेदा के एक और किशोर बालक। राम लाल और हाजरा कभी-कभी आते हैं, फिर चले जाते हैं।

निरंजन के आत्मीय नवयुवक श्रीरामकृष्ण के सामने बैठे हुए ध्यान कर रहे हैं—श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ध्यान करने के लिए कहा है।

मास्टर प्रणाम करके बैठे। कुछ देर बाद निरंजन के आत्मीय प्रणाम करके विदा हुए। ऐंड़ेदा के दूसरे युवक भी प्रणाम कर खड़े हो गये। उनके साथ जायेंगे।

श्रीरामकृष्ण—(निरंजन के आत्मीय से)—तुम फिर कब आओगे ?

भक्त—जी, सोमवार तक—शायद।

श्रीरामकृष्ण—(आग्रह पूर्वक)—लालटेन चाहिए ? —साथ ले जाओ।

भक्त—जी नहीं, इस बगीचे के आस-पास तो रोशनी है—कोई जरूरत नहीं।

श्रीरामकृष्ण—(ऐंड़ेदा के लड़के से)—क्या तू भी जा रहा है ?

लड़का—जी हाँ, बड़ी सर्दी है।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, सिर पर कपड़ा लपेट लेना।

दोनों लड़कों ने फिर से प्रणाम किया और चल दिये।

× × ×

अमावस की घोर रात्रि है। तिसपर जगन्माता की पूजा है। श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर तकिए के सहारे बैठे हुए हैं। अन्तर्मुख हैं। रह-रह कर भक्तों से दो एक बातें करते हैं।

एकाएक मास्टर तथा अन्य भक्तों की ओर देखकर कह रहे हैं—अहा, उस लड़के का कितना गम्भीर ध्यान था ! (हरिपद से) कैसा ध्यान था ?

हरिपद—जी हाँ, वह ठीक काठ की तरह स्थिर था।

श्रीरामकृष्ण—(किशोरी से)—उस लड़के को जानते हो ? किसी सम्बन्ध से निरंजन का भाई लगता है।

फिर सब चुपचाप बैठे हुए हैं। हरिपद श्रीराम कृष्ण के पैर दबा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण धीरे-धीरे गा रहे हैं, एकाएक उठकर बैठ गये और बड़े उत्साह से गाने लगे—

"यह सब उस पागल स्त्री का खेल है। वह खुद भी पागल है, उसके पति महेश भी पागल हैं, और दो चेले हैं वे भी पागल हैं। उसका रूप क्या है, गुण क्या हैं, चाल-ढाल कैसी है, कुछ कहा नहीं जाता। जिनके गले में विष की ज्वाला है, वे शिव उसका नाम बार-बार लेते हैं। सगुण और निर्गुण का विवाद लगाकर वह रोड़े से रोड़ा फोड़ती है। वह सब विषयों में राजी है, बस कर्तव्यों के समय ही उसकी नाराजगी होती है। रामप्रसाद कहते हैं, संसार-सागर में अपना डोंगा डाल कर बैठे रहो। जब ज्वार आये तब वह जहाँ तक ले जाय, चढ़ते जाओ और जब भाटा हो, तब जहाँ तक उतरना हो, उतरते जाओ"

गाते ही गाते श्रीराम कृष्ण मतवाले हो गये। उसी आवेश में उन्होंने और कई गाने गाये। एक और गाने का भाग नीचे दिया जाता है—

"काली ! तुम सदानन्दमयी हो, महाकाल के मन को भी मुग्ध कर लेती हो। तुम आप नाचती हो, आप गाती हो और आप ही तालियाँ बजाती हो। तुम आदि भूता हो, सनातनी हो, शून्यरूपा हो, तुम्हारे मस्तक पर चन्द्र शोभा दे रहा है। अच्छा माँ, तुम यह तो बतलाओ, जब ब्रह्माण्ड ही नहीं था, तब तुम्हें मुण्ड-माला कैसे मिली ? तुम्हीं यंत्री हो, हम लोग तुम्हारे ही इशारे पर चलते हैं। तुम जिस तरह रखती हो, उसी तरह रहते हैं और जो कुछ कहलाती हो, वही कहते हैं। अशान्त होकर कमलाकान्त तुम्हें गालियाँ देता हुआ कहता है, अबकी बार तो, ऐ सर्वहरे ! खड्ग धारण करके मेरे धर्म और अधर्म दोनों को तुम खा गयीं।"

श्रीराम कृष्ण ने फिर गाया—

"जय काली जय काली, कहते हुए अगर मेरा प्राणान्त हो, तो मैं शिवत्व को प्राप्त करूँगा। वाराणसी की मुझे क्या जरूरत है ? काली अनन्तरूपिणी हैं, उनका अन्त पा सके, ऐसा कौन है ? उनका थोड़ा सा ही माहात्म्य समझकर शिव उनके पैरों पर लोटते हैं।"

गाना समाप्त हो गया। इसी समय राजनारायण के दो लड़कों ने आकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। सभामण्डप में दिन के पिछले पहर राजनारायण ने चण्डी-गीत गाया था। उनके साथ उन दोनों लड़कों ने भी गाया था। श्री रामकृष्ण दोनों लड़कों के साथ फिर गाने लगे।

श्रीरामकृष्ण के कई गाने गा चुकने पर कमरे में रामलाल आये। श्रीराम कृष्ण कहते हैं, तू भी कुछ गा, आज पूजा है। रामलाल गा रहे हैं—

"यह किसकी कामिनी है—समर को आलोकित कर रही है ? सजल जलद-सी इसकी देह की कान्ति है, दर्शनों में दामिनी की द्युति दीख पड़ती है ! इसकी केशराशि खुली हुई है, सुरों और असुरों के बीच में भी इसे भय नहीं होता। इसके अट्टहास से ही दानवों का नाश हो जाता है। कमलाकान्त कहते हैं, जरा समझ तो, यह गजगामिनी कौन है !"

श्रीरामकृष्ण नृत्य करते हैं, प्रेमानन्द में पागल हो रहे हैं। नाचते ही नाचते वे गाने लगे—"मेरा मन-मिलिन्द काली के नीलकमल चरणों पर लुब्ध हो गया।"

गाना और नृत्य समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी खाट पर बैठे। भक्तगण भी जमीन पर बैठे।

मास्टर से श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—तुम न आये, चण्डी-गीत कितना सुन्दर हुआ ?

□

महाशक्तिधर स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

ब्रह्मचारी गुरुदास ने स्वामी विवेकानन्द का प्रथम दर्शन स्वामीजी की द्वितीय अमेरिका यात्रा के समय न्यूयार्क में किया था। अपने संस्मरण लिखते हुए वे कहते हैं, "स्वामीजी का व्यवहार इतना सहज, सरल था, सम्मिलित लोगों से इतना मिलता-जुलता था कि प्रथम दर्शन में स्वामीजी ने मुझे प्रभावित नहीं किया। लेकिन जब मैंने उन्हें मंच पर अन्य लोगों द्वारा घिरे कुछ मिनटों तक देखा तो अचानक यह विचार मेरे मन में कौंध गया; 'कैसे विशाल देवतुल्य हैं ये, कैसी शक्ति, कैसा पुरुषत्व, कैसा अद्भुत व्यक्तित्व !! उनके निकट वाले सभी व्यक्ति कैसे नगण्य दिखाई दे रहे हैं।' मुझे लगा कि स्वामीजी में असीम शक्ति है, और अगर वे चाहें तो पृथ्वी और स्वर्ग को हिला सकते हैं।" सचमुच स्वामी विवेकानन्द इस युग के सबसे महान शक्तिधर महापुरुष थे। उनके गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्दजी की मान्यता थी कि स्वामी विवेकानन्द ने इस महाशक्ति के द्वारा समग्र विश्व के चिन्तन-प्रवाह की दिशा परिवर्तित कर दी है।

स्वामीजी द्वारा शक्ति को स्वीकार करना—

स्वामी विवेकानन्द के इस शक्तिधारण की, कलकत्ता के एक कालेज के छात्र नरेन्द्र नाथ के महाशक्तिधर विश्व विजयी स्वामी विवेकानन्द बनने की, एक रहस्यमय गाथा है। इस गाथा का श्रीगणेश उस दिन हुआ था जिस दिन युवक नरेन्द्रनाथ ने माँ काली को स्वीकार किया था। श्रीरामकृष्ण के संपर्क में आने के पूर्व वे ब्रह्म समाज के सदस्य थे एवं उसके घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर उन्होंने मूर्तिपूजा न करने की शपथ ली थी। यही कारण था कि श्रीरामकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ भक्ति एवं आदर होते हुए भी वे उनकी आराध्या माँ काली को न तो स्वीकार ही करते थे और न ही काली-मन्दिर जाकर देवी-मूर्ति को प्रणाम ही करते थे। उनके लिये वह एक प्रस्तर-खण्ड मात्र ही थी, तथा इस विषय को लेकर उनके व श्रीरामकृष्ण के बीच कभी-कभी बहस भी हुआ करती थी।

इसी समय अपने पिता के आकस्मिक निधन के कारण स्वामीजी के परिवार पर घोर आर्थिक संकट आ पड़ा। सभी उपायों के असफल होने पर अन्त में सहायता की आशा से वे एक दिन श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे। गुरु-शिष्य के बीच हुआ उस दिन का वार्तालाप एवं बाद की घटनाएँ अत्यन्त रोचक एवं सार गर्भित हैं।

सर्वप्रथम स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण से उनके आर्थिक संकट दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करने को कहा। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण बोले, "बेटा, मैं इस तरह की याचना नहीं कर सकता। तू स्वयं ही माँ जगदम्बा के पास जाकर क्यों नहीं माँगता ? तेरी समस्त कठिनाइयाँ तेरे माँ को न मानने के कारण ही हैं।"

"पर मैं तो माँ को नहीं पहचानता। कृपया मेरी तरफ से आप ही उन्हें कहिए। आपको मेरे लिए कहना ही होगा।" —स्वामीजी ने उन्हें न छोड़ा।

इस पर श्रीरामकृष्ण ने मृदुस्वर में उत्तर दिया, "बेटा,मैं तो माँ से बार-बार कह चुका हूँ, लेकिन तू उन्हें नहीं मानता इसलिये वे मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं

करतीं। अच्छा, आज मंगलवार है। आज रात काली मन्दिर जा और माँ को प्रणाम कर जो चाहे माँग लेना, वह तुझे मिल जायेगा। माँ चैतन्यस्वरूपा, ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति हैं। अपनी इच्छा मात्र से उन्होंने जगत् की सृष्टि की है। उनमें सब कुछ प्रदान करने की शक्ति है।"

श्रीरामकृष्ण के शब्दों में दृढ़ विश्वास के साथ उस रात स्वामीजी ने काली मन्दिर जाकर माँ को प्रणाम किया। उन्हें साक्षात् अनुभव हुआ कि माँ जीवन्त एवं चैतन्य स्वरूपा हैं तथा वे दिव्य प्रेम तथा अनन्त आनंद का स्रोत हैं। वे सांसारिक समृद्धि और सुख-स्वाच्छन्द की प्रार्थना न कर सके तथा ज्ञान, भक्ति, विवेक और वैराग्य की प्रार्थना कर परिपूर्ण हृदय लेकर वापस लौट आये।

श्रीरामकृष्ण के आनन्द की तो सीमा ही न रही। उनकी इस प्रसन्नता के कई कारण थे। सर्वप्रथम, श्रीरामकृष्ण जिस सर्वसहिष्णु, सर्व-समन्वयी भाव के विस्तार के लिये अवतरित हुए थे, उसमें किसी भी आध्यात्मिक भाव या विचार-धारा का वर्जन नहीं है। वे ईश्वर के सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार, सभी रूपों को स्वीकार करते थे। द्वितीयतः चित्र, एवं प्रतिमा आदि स्थूल प्रतीकों की सहायता से की गयी निम्न स्तर की पूजा से लेकर अवलंबन-हीन निर्गुण-निराकार के ध्यान अथवा ब्रह्मात्मैकत्व भाव के चिन्तन तक की सभी साधना पद्धतियाँ उन्होंने स्वीकार की थी। अतः उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनके भावी सन्देश वाहक स्वामी विवेकानन्द इन दोनों सिद्धान्तों को स्वीकार करें। ब्रह्म समाज के मतानुसार अबतक स्वामी जी केवल निर्गुण-निराकार ईश्वर में ही विश्वास करते थे। अतः उस दिन माँ जगदम्बा के सगुण पक्ष एवं मूर्तिपूजा के औचित्य की उनकी स्वीकृति से श्रीरामकृष्ण का आनन्दित होना स्वाभाविक ही था।

श्रीरामकृष्ण ब्रह्म और उसकी शक्ति, दोनों को सत्य मानते थे और इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा उनके अविर्भाव का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। जिस प्रकार कुण्डली मारकर बैठा हुआ साँप और रेंगता हुआ साँप दोनों एक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और उसकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कारक शक्ति, दोनों अभेद हैं। जबतक देह व मन की सत्ता बनी हुई है, तबतक हम शक्ति के दायरे के भीतर हैं तथा हमें शक्ति को स्वीकार करना ही होगा। श्रीरामकृष्ण की कृपा से उनके अद्वैत वेदान्ती गुरु स्वामी तोतापुरी जी भी इस सत्य को हृदयंगम करके धन्य हुए थे तथा श्रीरामकृष्ण की हार्दिक इच्छा थी कि स्वामी विवेकानन्द भी इसे स्वीकार कर अपने दार्शनिक दृष्टि-कोण को सन्तुलित एवं परिपूर्ण बनावें। व्यावहारिक दृष्टि से भी, संसार के सभी कार्यों, लौकिक अथवा आध्यात्मिक के लिए शक्ति आवश्यक है। अगर साधक शक्ति को प्रसन्न कर ले तो उसकी शिद्धि आसान हो जाती है, क्योंकि "ब्रह्मज्ञान की कुंजी उसी के हाथ में रहती है।" इसी जगत्-कारिणी, शक्ति को श्रीरामकृष्ण माँ काली कहकर पुकारते थे तथा उन्हें स्वीकार करते समय स्वामीजी ने शक्ति की सत्यता को स्वीकार किया था।

माँ जगदम्बा को स्वीकार करने के उपर्युक्त तीन अर्थों के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द के सन्दर्भ में इसका एक विशेष महत्त्व है। श्रीरामकृष्ण जानते थे कि स्वामी विवेकानन्द उनके विशेष सन्देश-वाहक हैं जिन्हें जगत् कल्याण के लिये अनेक कार्य करने होंगे जो केवल शक्ति के द्वारा ही संभव हैं। यदि वे शक्ति को ही न मानें तो वह उनके माध्यम से कैसे कार्य कर सकती है? अतः शक्ति को स्वीकार करना उस प्रक्रिया की प्रथम सीढ़ी, प्रथम सोपान है जिसके द्वारा स्वामीजी में महाशक्ति का प्राकट्य होना था।

शिव और शक्ति

इस सन्दर्भ में हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वामी विवेकानन्द को शिवावतार माना जाता है। वस्तुतः हम स्वामीजी तथा शिव के बीच अनेक साम्य भी पाते हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव संहार के देवता हैं।

वे सदा समाधिस्थ रहते हैं, पर समाधि से उठने पर जगत् का संहार करते हैं। लेकिन कभी-कभी वे सृष्टि के पालन में सहायक भी होते हैं। इस प्रकार शिव की दो शक्तियाँ हैं, पहली उनकी नैसर्गिक संहार शक्ति एवं दूसरी परिमार्जित पालन-शक्ति। इस सत्य को शिव-पार्वती की कथा के माध्यम से पुराणों में व्यक्त किया गया है। शिव की शक्ति के रूप में, सती दक्ष-यज्ञ के ध्वंस का कारण बनती हैं। सती की मृत देह को उठाकर शिव उन्मत्त हो जगत् का विनाश करने लगते हैं। तब बाध्य हो विष्णु को सती के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करना पड़ता है। तब शिव पुनः समाधिस्थ हो जाते हैं। इसके बाद सती का पार्वती के रूप में पुनर्जन्म होता है, तथा वे शिव को पाने के लिये तपस्या करती हैं। तारकासुर-वध के लिये शिव द्वारा पार्वती को स्वीकार करना आवश्यक है जो विष्णु की प्रेरणा से संभव होता है। परिणामस्वरूप षडानन का जन्म एवं देवताओं की रक्षा होती है।

इससे मिलता-जुलता घटनाक्रम स्वामीजी के जीवन में भी दिखाई देता है। बाल्यकाल में वे अत्यन्त उद्दंड थे तथा प्रायः घर में तोड़-फोड़ किया करते थे। उन्हें नियंत्रित रखना एक समस्या थी। लेकिन शिव का नाम सुनते ही वे शान्त हो जाया करते थे। ध्यान प्रवणता तो उनकी बचपन से ही थी। एकबार गिरकर उनके सिर में चोट लग गयी थी जिससे बहुत सा खून बह गया था। इस घटना के बारे में श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि इससे उसकी शक्ति क्षीण हो गयी अन्यथा वह संसार को तहस-नहस कर डालता। श्रीरामकृष्ण स्वामीजी के शिव-स्वरूपत्व तथा ध्यानप्रवणता एवं स्वभावतः समाधि में डूबे रहने की इच्छा से परिचित थे। लेकिन वे चाहते थे कि स्वामी जी पुनः शक्ति स्वीकार करें, जो संहारात्मक न होकर पालनकारण हो। यही कारण था कि जिस दिन स्वामी जी ने माँ जगदम्बा को स्वीकार किया, उस दिन श्रीरामकृष्ण के आनन्द की सीमा नहीं रही। वस्तुतः काली और कोई नहीं, स्वयं श्रीराकृष्ण ही थे। स्वयं उन्हीं का कथन है कि उसमें (अर्थात् स्वामी जी में) शिव हैं तथा मुझमें शक्ति, तथा दोनों एक हैं। शिव-शक्ति के इस मिलन से भारतीय नवजागरण एवं जगत के आध्यात्मिक कल्याण की योजना रूपी षडानन का जन्म हुआ।

लेकिन क्या माँ को स्वीकार करते समय स्वामी विवेकानन्द ने माँ जगदम्बा को शक्ति के रूप में स्वीकार किया था? संभवतः नहीं। उन्हें माँ, आनन्दमयी चैतन्यरूपा, वरदा, अभयदा माँ के रूप में ही दिखाई दीं। और उन्होंने उनसे माँगा भी ज्ञान, भक्ति, विवेक और वैराग्य, न कि वीर्य, बल अथवा शक्ति। वे श्रीरामकृष्ण के आनन्द के रहस्य को नहीं समझ पाये थे, न ही यह स्वीकार कर सके थे कि उन्हें जगत्-कल्याण का महत्कार्य करना होगा।

श्रीरामकृष्ण द्वारा स्वामीजी में शक्ति संचार—

श्रीरामकृष्ण द्वारा स्वामीजी में शक्ति संचार करना इस रहस्यमय गाथा का दूसरा सोपान या दृश्य है। महा समाधि के कुछ दिन पूर्व एक दिन श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी को अपने पास बुलाया और उन्हें अपने सामने बिठाकर समाधिस्थ हो गये। स्वामीजी को ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके भीतर कोई शक्ति प्रवेश कर रही है, और वे भी समाधिस्थ हो गये। पुनः बाह्य चेतना प्राप्त करने पर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण रो रहे हैं। पूछने पर उन्होंने कहा कि वे अपना सर्वस्व स्वामीजी को देकर फकीर हो गये हैं। जो शक्ति अबतक श्रीराम-कृष्ण रूपी देह और मन का आश्रय लेकर कार्य कर रही थी, वही अब स्वामीजी की देह और मन को आश्रय करती है। परवर्ती काल में स्वामीजी कहा करते थे कि जिस शक्ति को श्रीरामकृष्ण काली कहा करते थे, वही मुझे चला रही है और क्षणभर भी चैन नहीं लेने देती।

शक्ति की अभिव्यक्ति

शिवावतार स्वामी विवेकानन्द की यह हार्दिक इच्छा थी कि वे शुकदेव की तरह सदा समाधि में निमग्न रहा करें। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया था कि जब तक वे माँ जगदम्बा का कार्य पूरा नहीं कर लेते तब तक उन्हें वह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।

इतना होने पर भी स्वामीजी अपनी चिर वांच्छित इच्छा को पूरी करने के लिये श्रीरामकृष्ण की महा समाधि के बाद हिमालय की किसी गुफा में ध्यानस्थ होने के लिये प्रस्थान करते हैं। लेकिन अन्तरस्थ विकासोन्मुख शक्ति उन्हें यह करने नहीं देती। परिव्राजक जीवन में वह धीरे धीरे प्रकट होने लगती है और कन्या कुमारी पहुँचने तक पूर्ण रूप से प्रकट हो जाती है। देवी कन्या कुमारी की मन्दिर में पूजा करने के बाद स्वामीजी ने सागर में दो छलांग दूर स्थित उसी शिला पर बैठ कर ध्यान किया जिस पर बैठ कर, पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, देवी कन्या ने महादेव शिव को प्राप्त करने के लिये तप किया था। शक्ति की अभिव्यक्ति के पूर्व माता की पूजा एवं जगदम्बा के श्रीपाद स्पर्श से पवित्र शिला पर ध्यान तात्पर्यपूर्ण हैं। यहीं पर सर्वप्रथम स्वामीजी ने भारत के नव-जागरण एवं निर्माण की योजना बनाई।

इसके बाद प्रारंभ हुआ स्वामीजी का विश्व-विजयी अभियान जो सर्व विदित है। स्वामीजी के माध्यम से भगवती शक्ति द्वारा किये गये महत् कार्यों को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) इच्छा, स्पर्श या शब्द मात्र से श्रोताओं में आध्यात्मिकत्ता का संचार करना।

(२) अमेरिका में ईसाइयों द्वारा भारत सम्बन्धी भ्रान्त धारणा अपने अथक निहत्थे प्रयत्न द्वारा दूर करना तथा अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करना।

(३) भारत तथा विदेशों में प्रवचन, वार्तालापों तथा लेखों द्वारा धर्म प्रचार करना।

(४) रामकृष्ण मठ एवं मिशन की स्थापना करना।

(५) सुप्त भारत को जाग्रत करना तथा प्रगति की दिशा प्रदर्शित करना।

(६) समग्र विश्व की चिन्तन धारा को अपनी दैवी शक्ति के द्वारा आध्यात्मिक दिशा प्रदान करना तथा उसे अधिक उदार एवं सहिष्णु बनाना।

उपर्युक्त प्रत्येक कार्य अपने आप में एक एक गुरुत्व पूर्ण, पर्वतसम महान् एवं कठिन कार्य था, जिसे किसी सामान्य व्यक्ति के लिये कर पाना कठिन था। इन सभी कार्यों को एक साथ इतने कम समय में सम्पन्न करना दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष के लिये ही संभव था।

शक्ति का विसर्जन

दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में माँ जगदम्बा की स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्वीकृति से जिस शक्ति की अभिव्यक्ति की गाथा प्रारंभ हुई थी उसकी परिसमाप्ति कश्मीर के क्षीर भवानी के मन्दिर में लगभग पन्द्रह वर्षों के बाद हुई। सन् १८७८ ई० में कश्मीर यात्रा के समय स्वामीजी माँ क्षीरभवानी के भग्न मन्दिर को देखकर व्यथित हो बोल उठे कि यदि मैं होता तो अपने प्राणों का विसर्जन करके भी माँ की रक्षा करता। तब अचानक उन्हें माँ जगदम्बा की वाणी सुनाई दी, "बेटा, तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ।" यह मानो शक्ति-संवरण का संकेत था। इस घटना के बाद स्वामीजी को यह कहते सुना जाता था कि अब वे अधिक नहीं जीयेंगे, क्योंकि माँ जगदम्बा ने, जो अबतक उनका हाथ पकड़ कर चला रही थीं, अब उनका हाथ छोड़ दिया है। जिन स्वामी विवेकानन्द ने कन्याकुमारी की शिला पर बैठ कर 'एक योजना खोज निकाली' थी, वे ही अब अपने पत्रों में लिखते हैं कि मेरी अब कोई योजना नहीं है। जिन पर दुखकातर स्वामीजी को दर्द भरे कण्ठ से 'मेरो दरद न जाने कोय' गुन-गुनाते सुना जाता था, वे ही अब, 'अब शिव पार करो मोरी नैया' दुहराते रहते हैं। देशभक्त, धर्म प्रचारक, विश्वविजेता के स्थान पर रह जाता है एक बालक जो अपने शिव स्वरूप में विलीन होने के लिये व्यग्र है। श्रीरामकृष्ण की वाणी सत्य होती है और माँ का कार्य समाप्त होते ही स्वामीजी ४ जुलाई १९०२ को योगावस्था में अपनी नश्वर देह त्याग देते हैं।

उपसंहार

स्वामीजी ने शरीर त्याग दिया है, पर क्या उनकी शक्ति ने अपना कार्य बन्द कर दिया है ? नहीं। अब वह देह-विशेष की द्वारा सीमित हुए बिना अमूर्त एवं अबोधित रूप से सर्वत्र कार्य कर रही है। स्वामी ने इस बात का आश्वासन भी दिया था, "सम्भवतः यह अच्छा होगा कि मैं अपने इस शरीर के बाहर निकल जाऊँ और इसे जीर्ण वस्त्र की भाँति उतार फेंकूँ, किन्तु फिर भी मैं कार्य करता रहूँगा। मैं सर्वत्र मानव समाज को प्रेरणा प्रदान करता रहूँगा जबतक कि संसार यह न जान ले कि वह ईश्वर के साथ एक है।" स्वामी जी की शक्ति आज भी कहीं प्रत्यक्ष तो कही प्रत्यक्ष तो कही परोक्ष रूप में कार्य कर रही है। जो कोई स्वामी जी के ध्यान, उनके उपदेशों का अध्ययन एवं आदेशों का पालन कर उनके साथ तादात्म स्थापित करने में समर्थ होगा, वह उनकी महाशक्ति के प्रवाह का माध्यम बनकर आज भी अपने को धन्य बना सकेला है।

दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आपको पवित्र बना लें! आओ, हम अपने आपको पूर्ण बना लें।

—स्वामी विवेकानन्द

श्रद्धाञ्जलि-द्वय

मूल : तमिष महाकवि सुब्रह्मण्य भारती
अनुवाद : डा० प्रभाकर माचवे
३६ ए, शेक्सपियर सरणी, कलकत्ता-७०००१७

निवेदिता

हे निवेदिते, माते
प्रेमार्पित मंदिर तू
आत्मा का अंधकार
दूर करनेवाली शलाका तू
सूखी धरतीपर वर्षा
असहाय पथभ्रष्ट सबकी सहायिका
ईश्वर-कृपा का साक्षात् प्रसाद तू
सत्य की स्फुलिंग तू
मेरे प्रणाम ले, निवेदिते !

अभेदानंद

वेद और समृद्ध दुर्मिल उपपदादि का
पूर्ण ज्ञान निर्दोष, सेवार्त,
ब्रह्मानंद-प्रकाश के पुंज से दैदीप्य
आये इस में तिमिर निवारणार्थ

एकमेव अद्वितीय सत्य, शेष मायाजीव,
उस एक को कहना 'मेरा-तेरा' मिथ्या ही
पंचेंद्रिय ढाँकते हैं, मन सत्य क्या पाये ?
जितेंद्रिय, आप आमतत्त्व के आरक्षी

शंकर की कीर्ति दिग्दिगन्त व्यापी थी
वे ही पुनः आप के रूप में अवतरित
पहले वे आये विवेकानंद रूप में
वह प्रकाश अंत हुआ, आपने चलाया त्वरित्

महा-संत अभेदानंद आपकी चरण-प्रभा
इस नगर आयी । आपकी साधना कृपा बरसाये
हम सब भी माया का आवरण फेंककर
सत्य की वेदी तक पहुँचें । अनुग्रह करें !

गतांक से आगे

श्री शंकराचार्य : जीवन तथा तत्त्वोपदेश

—स्वामी वागीश्वरानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

व्यक्तित्व—आचार्य का जीवन महासमन्वय स्वरूप था। चरमसत्य की सर्वोच्य भूमि पर प्रतिष्ठित हो उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया था कि यद्यपि अंतिम सत्य—निरपेक्ष-सत्य—एक है, परन्तु सापेक्ष सत्य अनेक हैं। इन सापेक्ष-सत्यों का जीवन में क्या स्थान है, क्या मूल्य है, उनका किस प्रकार उपयोग करने पर वे निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं—यह वे सही सही जानते थे। इसलिए उन्होंने इनकी उपेक्षा नहीं की। उन्होंने निरपेक्ष सत्य की ओर—जो जीवन का अंतिम ध्येय है—सब का लक्ष्य आकर्षित करते हुए उसकी प्राप्ति की दिशा में सबको प्रोत्साहित किया, अनुप्राणित किया, सहायता की। उनका उपदेश यही था कि 'आंतिम सत्य की उपलब्धि किये बिना—सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुँचे बिना—बीच ही में कहीं रुक मत जाओ। मिथ्या अभिनिवेश, भ्रांत धारणा लेकर मत चलो। श्रुति-युक्ति-अनुभूति की कसौटी पर परखकर ही किसी सिद्धांत को स्वीकार करो। आभास को सत्य मत समझ बैठो।

उनके जीवन और व्यक्तित्व में सर्वत्र महान समन्वय ही दिखाई देता है, विराट् पूर्णता ही दिखाई देती है। अत्यंत प्रखर हारणाशक्ति और कुशाग्र बुद्धियुक्त मस्तिष्क के साथ अतीव भावकोमल हृदय, अगाध ज्ञान के साथ अपार भक्ति कठोर त्याग-बैराग्य के साथ अपूर्व करुणा, क्षमा, मानव-प्रेम इस प्रकार कितने ही तथाकथित परस्पर-विरोधी भावों का उनके व्यक्तित्व में अनुपम संगम दिखाई देता है। इन सर्वसंग परित्यागी ब्रह्म विद्वरिष्ठ ज्ञानिश्रेष्ठ की अपूर्व मातृभक्ति, अलौकिक गुरुभवित, शिष्य-वत्सलता, पतिस्पार्धियों के प्रति क्षमाशीलता अज्ञानांधकार में मग्न मानवजाति के प्रति अपार अनुकंपा आदि देखने पर सचमुच ही मन उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है।

अपनी संकीर्ण दृष्टि के कारण आचार्य शंकर के इस अतिउदार समन्वय भाव को न समझ पाकर कोई-कोई कहते हैं कि उन्होंने अद्वैत छोड़ सभी मतों का 'खडंन' किया। पर यह कितनी गलत धारणा है। आचार्य ने सभी को 'पूर्ण' किया—सफल किया। खंडन या नाश तो उन्होंने केवल 'अज्ञान' का किया। उसी प्रकार घोर अज्ञानवश कोई-कोई उन पर आरोप करते हैं कि उन्होंने मायावाद का प्रचार कर देश में अकर्मण्यता फैलायी या मानव जीवन की महत्वाकांक्षाओं को उखाड़ फेंका। पर यह कितनी मिथ्या कल्पना है। आचार्य ने अपने जीवन में, स्वयं का कोई प्रयोजन न होते हुए भी केवल लोककल्याण के लिए कितना श्रम स्वीकार किया, कितना प्रचंड कार्य किया! उनके जीवन में आलस्य, आरामतलबी, अकर्मण्यता की गंध तक नहीं दिखाई देती। उन्होंने जड़ताग्रस्त जनता को सत्कार्य में प्रवृत्त कराया, उद्यमशक्ति बनाया। अस्तु।

तत्त्वोपदेश :

आचार्य शंकर ने अद्वैत ज्ञान के प्रतिपादन के लिए विपुल ग्रंथ रचे। उनमें प्रस्थानत्रय-भाष्य, कई प्रकरण ग्रंथ एवं विविध-विषयक स्तोत्र साहित्य का समावेश होता है। उनके प्रसन्न-गंभीर, गंगाप्रवाह की तरह पावन और ओधवान भाष्यों, सरल, सुबोध-मनोहारी शैली में रचे प्रकरण ग्रंथों एवं भावमपुर, ललितकोमल स्तोत्रों का अध्यात्मजगत् में अद्वितीय स्थान है। वस्तुतः इन ग्रंथों में निबन्द आध्यात्मिक भावराशि का प्रभाव कालातीत है, अजरामर है।

उनके ग्रंथों के आधार-पर उनका दर्शन अत्यंत सुस्पष्ट रीति से व्यक्त होता है। शंकर दर्शन का सार सर्वस्व इस अर्थश्लोक में निहित हैं :—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।"

अर्थात् (१) ब्रह्म ही सत्य यानी आंतिम तत्व है।

(२) जगत् मिथ्या यानी भ्रमात्मक आभास है।

(३) जीव स्वरुपतः ब्रह्म ही है।

(४) जीव ब्रह्म से किसी प्रकार भिन्न नहीं।

आचार्य के भाष्यों के सहारे उनके दर्शन के मूल तत्त्वों का अति संक्षेप में इस प्रकार विवेचन किया जा सकता है।

(१) आचार्य कहते हैं :—परम तत्व या परमार्थ सत्य, जिसे शास्त्रों में ब्रह्म कहा गया है, एक ही है। इसे छोड़ दूसरी कोई भी सत्ता विद्यमान नहीं।

"ब्रह्म एवं एकं परमार्थसत्यम् इति वेदानुशासनम्" (मुंडक भाष्य २।२।११)

(२) प्रश्न उठता है :—फिर हमें जो स्वयं की और जगत् की सत्ता दिखाई दे रही है वह क्या है ?

आचार्य कहते हैं—यह तुम्हारा भ्रम है—मिथ्याज्ञान है।

"अब्रह्म प्रत्ययः सर्वोऽविद्यामात्री रज्ज्वामिव सर्पप्रत्ययः।" (मुंडक भाष्य २।२।११)

अविधारुपी अंधकार के कारण तुम रस्सी की जगह साँप देख रहे हो।

(३) मिथ्याज्ञान, भ्रांतिप्रत्यय के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है कि तुम अपने स्वभावसिद्ध ब्रह्मस्वरूप को छोड़ 'मैं-मेरा' में डूबकर कष्ट पा रहे हो।

"विकारानेव तु 'अहं-मम' इत्यविद्यया
आत्म-आत्मीयेन भावेन सर्वो जन्तुः प्रतिपद्यते
स्वाभाविकीं ब्रह्मात्मतां हित्वा।"
(ब्रह्मसूत्र भाव्य २।१।१४)

सत्य-असत्य का तुम्हारे जीवन में मिश्रण हो गया है, उसी के अनुसार जीवन के सभी व्यवहार चल रहे हैं।

"मिथ्याज्ञान निमित्तः सत्यानूते मिथुनीकृत्य
'अहमिदं 'ममेदम्' इति नैसर्गिकोऽयं लोक-व्यवहारः।"

इस मिथ्या प्रतीति, भ्रान्ति प्रत्यय या अध्याय का कारण है—अविधा, माया या अज्ञान।

आचार्य इस प्रकार जगत् की और उसके कारण माया की सत्ता को न स्वीकार करते हैं और न अस्वीकार। वे कहते हैं यह अनिर्वचनीय है।

"अहो अतिगंभीरा दुःख गाह्य विचित्रा माया चेयम्। (कठ भाष्य १।३।२)

(४) इस मिथ्याप्रत्ययरूप अध्यास को दूर करने का उपाय क्या है ?

आचार्य कहते हैं—इसके कारण को अज्ञान को—दूर करना ही वह उपाय है। अँधेरे के कारण रस्सी में साँप का भ्रम हो जाने से तुम कष्ट पा रहे हो; प्रकाश ले आओ—उससे रस्सी का यथार्थ रूप प्रकट हो तुम्हारे कष्ट दूर हो जाएँगे।

(५) 'यह ज्ञान का प्रकाश कहाँ मिलेगा ?'

आचार्य कहते हैं—यह तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है, केवल इसे जीवन में प्रकट करना होगा। इस स्वात्म-निहित अव्यक्त ज्ञान को प्रकट करना ही साधना है।

इस उपनिषद् के प्रथम मंत्र के भाष्य में आचार्य अत्यंत सुंदर रीति से यह बात समझाते हैं—

"यथा चंदन-अगरु-अदि उदकादि-संबंधन क्लेदा दिजम् औपाधिकं दौर्गन्ध्यं तत्स्वरुपानिर्घर्षणेन आच्छाद्यते स्वेन पारमार्थिकेन गन्धेन, लब्धदेव हि स्वात्मानि अध्यस्तं स्वाभाविकं कर्तृत्व भोक्तृत्व-लक्षणं जगद् द्वैतरूप.....सर्वमेव नामरूप कर्मात्रं विकारजातं परमार्थसत्यभावनया त्यक्तं स्यात्।" (ईश-भाष्य १)

अर्थात्-चंदन का टुकड़ा जल में पड़े रहने के कारण उस पर औपाधिक दुर्गन्ध चढ़ जाता है, परंतु उसे घिसने पर उसकी स्वाभाविक सुगंध प्रकट होकर दुर्गन्ध को नष्ट कर देती है। उसी प्रकार परमार्थ सत्यरुप आत्मा की भावना के द्वारा यह सारा आभास नष्ट हो यथार्थ स्वरुप की उपलब्धि हो जाती है।

(६) आचार्य ने साधना को बड़ा महत्त्व दिया है। वे इस ज्ञान की प्राप्ति के उपाय स्वरूप वेदान्त शास्त्र का श्रवण-मनन-निर्दिव्यासन रूपी उच्च साधना बताते हैं पर साथ ही यह बताना नहीं भूलते कि यह आरंभ करने के पहले और भी कुछ प्राथमिक साधनाएँ आवश्यक है। इन्हें साधन चतुष्टय कहा है। ये हैं—

नित्यानित्यविवेकः। इहामुत्रफलभोग विरागः। शमदमादिषट्संपत्। मुमुक्षुत्वं च।

इनके सिवा मन में ब्रह्मविषयक यथार्थ जिज्ञासा ही नहीं उठ सकती फिर ब्रह्मज्ञान तो दूर रहा।

"तेषु हि सत्सु—शक्यते ब्रह्म जिज्ञासितुं ज्ञातुं च, न विपर्यये।"

इनके अभाव में शास्त्राध्ययनादि केवल शुष्क बौद्धिक व्यायाम हैं।

(७) इन साधनाओं का फल है चित्त की शुद्धि। चित्त के शुद्ध होते ही ज्ञान आप ही उदित होता है—तब मोक्ष या अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

इस साधना में कर्मयोग का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है आचार्य के शब्दों में—

"यः प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो स···ईश्वरार्पण-बुद्धया अनुष्ठीयमानः सत्त्वशुद्धये भवति कलाभि सांधिवर्जितः।" (गीता भाष्योपोद्छात)

स्वधर्म का—स्वभावनियत कर्म का—ईश्वरार्पण बुद्धि से, फल की अभिलाषा छोड़, अनुष्ठान करने से चित्तशुद्धि होती है।

अतः कर्म अमृतत्वदायक ज्ञान का उपाय है—"उपायभूतानि हि कर्माणि ज्ञानस्य। ज्ञानेन तु अमृतत्वप्राप्तिः।"

(८) कर्मादि साधना का स्वरूप कैसा होना चाहिए?

साधना सदा साध्य के अनुरूप—अनुकूल—होनी चाहिए। चूँकि यहाँ साध्य विषय ब्रह्म ही है, जो स्वयंसिद्ध है, इसलिए यहाँ केवल उसकी अनुभूति होना आवश्यक है। अतः हमारी सभी साधनाओं का पर्यवसान इस अपरोक्ष अनुभूति में हो इस ओर हमारा सतत ध्यान रहना चाहिए। इसी में उसकी सार्थकता है।

"अनुभवावसानत्वात् भूलवस्तुविषयत्वान् च ब्रह्मविज्ञानस्य।" (ब्र०सू०भाष्य १।१।२)

(९) यह अनुभूति, यह बोध ही सभी साधनाओं का प्राण है—यही मोक्षप्राणी का एकमेव साक्षात् साधन है।

(१०) बोधोऽ-यसधिनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैककारणम्।

पाकस्य बहिनेवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति।

आचार्य कहते हैं—अपनी ही मिथ्या दृष्टि के कारण तुम घोर संसार सागर में डूबकर इन असंख्य क्लेश-यातनाओं को भोग रहे हो, भला इससे तुम्हें दूसरा कौन

छुड़ा सकता है। तुम्हें इस यथार्थ सत्य बोध में प्रतिष्ठित होकर-सम्यगदर्शन में अधिष्ठित होकर-अपना उद्धार आप करना होगा। यही मानव जीवन का परम कर्तव्य है।

"उद्धेरदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ।
योगारूठस्वभासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया ॥"

(११) इस पथ पर चलने से तुम जीवित अवस्था में ही मुक्त-जीवन्मुक्त-हो जाओगे। तुम धन्य, कृतकृत्य हो जाओगे। यह जगत् तुम्हारे लिए आनंद-धाम बन जाएगा, तुम्हारी सभी चेष्टाएँ, सभी हरकतें, परमार्थमयी हो जाएँगी। तुम्हारी वाणी—चाहे संस्कृत हो या प्राकृत-वेद बन जाएगी।

"संपूर्ण जगदेव नंदनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः
गांगं वारि समस्तवारि निवहाः पुण्याः समस्तः क्रियाः
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावास्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे-परब्रह्मानि ॥"

रामकृष्ण आश्रम, छपरा (बिहार)

रामकृष्ण आश्रम, छपरा श्रीरामकृष्ण परमहंस, एवं स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा एवं आदर्शों के व्यापक प्रचार-प्रसार के निमित्त स्थापित है। जीवों की शिव-भाव से सेवा तथा चारित्रिक विकास द्वारा राष्ट्र को समुन्नत नागरिक प्रदान कर जन-जन की आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग करना इसका प्रमुख लक्ष्य है।

सम्प्रति आश्रम द्वारा एक पुस्तकालय, निःशुल्क वाचनालय तथा होमियोपैथिक दातव्य औषधालय का संचालन किया जाता है। आश्रम द्वारा बिना किसी जाति, धर्म और संप्रदाय तथा मत का विचार किये सब की समान भाव से सेवा की जाती है। इनके अतिरिक्त दैनिक संध्यारती आश्रम भी होती है। आप सबके सहयोग की अपेक्षा करता है। आप मनीआर्डर, चेक, बैंक ड्राफ्ट आदि द्वारा उदारता पूर्वक दान देकर आश्रम के सेवा-कार्य में सहकार कर सकते हैं।

सचिव,
रामकृष्ण आश्रम,
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

पञ्चम अनुवाक

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा ॥३८॥

तु (किन्तु) मुख्यतः (प्रधानतः) महत्कृपया (महापुरुष की कृपा से) वा (अथवा) भगवत्कृपालेशात् (भगवान की कृपा का कण मात्र पाने पर भी) [भक्ति की प्राप्ति होती है] ॥ ३८

प्रधानतः महापुरुष की कृपा से अथवा भगवान की लेशमात्र कृपा से भक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ३८

भक्ति की प्राप्ति के विधि-निषेध मूलक जिन उपायों का अबतक वर्णन किया, देवर्षि नारद के विचार से वे सब गौण हैं। मुख्य उपाय हुआ महापुरुषों की कृपा-प्राप्ति या भगवान की कृपा का एक कण-मात्र पाना।

'अथवा भगवान की कृपा से होती है'—यह कहने का उद्देश्य यह नहीं है कि दोनों में से किसी एक के होने से होती है। महापुरुष का—सद्गुरु का—आश्रय लाभ भी उनकी कृपा-सापेक्ष ही है। किसी-किसी क्षेत्र में देखा जाता है कि महापुरुष ने आश्रय-लाभ के पहले भी अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भगवान की कृपा पाकर धन्य हो गया। इन दृष्टान्तों को लक्ष्यकर 'वा' का व्यवहार किया है।

"साधुसंग से ईश्वर में अनुराग होता है। उनके प्रति प्रेम होता है। साधुसंग करते-करते ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होते हैं। साधुसंग करने से एक और उपकार होता है—सदसत्-विचार। असत् पथ पर मन के जाने पर विचार करना होता है।.....साधुसंग कैसा होता है, जानते हो? जैसे चावल का धोया हुआ जल। सत्य-कथा सुनते-सुनते विषय-वासना धीरे-धीरे कम हो जाती है। मदिरा का नशा दूर करने के लिए थोड़ा-थोड़ा चावल का धोया हुआ जल पिलाना पड़ता है। इससे धीरे-धीरे नशा मिट जाता है। इसी प्रकार संसार-मद में जो मत्त हो गये हैं उनका नशा दूर करने का एकमात्र उपाय है साधुसंग।"

साधुसंग के माहात्म्य का उज्जवल उदाहरण देवर्षि नारद का अपना जीवन ही है। दासीपुत्र होने पर भी केवल सत्संग के प्रभाव से वे प्रेम और भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ हो गये थे।

"उनकी दया होने से ही मुक्ति होती है। 'वे भव-बन्धन की बन्धन हारिणी तारिणी'। लड़का खेलने गया है' खाने के समय माँ पुकारती है। जब वे मुक्ति देंगे तब अपनी प्राप्ति के लिए व्याकुलता ला देते हैं। साधु संग करा देते हैं।"

"जबतक उनकी कृपा नहीं होती तब तक दर्शन नहीं होता। हजार चेष्टा करो, उनकी कृपा नहीं होने पर, उनका दर्शन नहीं होता। अहंकार का पूर्णतः त्याग नहीं होने पर, कृपा नहीं होती।"

महापुरुष की कृपा के बिना दुष्ट बुद्धि नहीं जाती। प्रह्लाद ने हिरण्य-कशिपु को कहा था—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत्॥
भा० ७.५.३२

'मनुष्य जब तक श्रद्धापूर्वक विषय त्यागी महापुरुषों की चरण-धूलि से अभिषिक्त नहीं होता,

तब-तक सौ शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रवण करने पर भी उसकी बुद्धि श्री भगवान के पाद-पद्म का स्पर्श नहीं कर पाती ।'

महत् पुरुष का लक्षण क्या है ?

महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

भा० ५।५।२

'जो समचित्त, प्रशान्त, क्रोधहीन, सभी प्राणियों का उपकार करने वाले एवं सदाचार सम्पन्न हैं वे महापुरुष हैं ।'

सत्संग के फल से हृदय में किस प्रकार क्रमशः भक्ति का विकाश होता है उसके सम्बन्ध में नारायण के अवतार कपिलदेव ने अपनी जननी देवहूति को कहा था—

सतां प्रसङ्गान् ममवीर्य संविदो भवन्ति हृत्कर्ण रसायणाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

भा० ३।२५।२५

'साधुसंग करने पर हृदय और कानों को आनन्द देने वाली मेरी लीला की कथा सुनने का सुयोग मिलता है । साधु-सेवा के फलस्वरुप अज्ञान दूर करने और मोक्ष प्राप्त करने का पथ उन्मुक्त होता है; हृदय में श्रद्धा, रति और भक्ति का क्रमशः आविर्भाव होता है ।'

श्रीकृष्ण उद्धव को सत्संग का माहात्म्य बताते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसंगा पहो हि माम् ॥

भा० ११।१२।१-२

'सत्संग के फलस्वरूप मनुष्य की सर्वविधि सांसारिक आसक्ति शीघ्र नष्ट हो जाती है । सत्संग के द्वारा साधक जितनी सहजता से मुझे वशीभूत कर पाते हैं; सांख्य, योग, स्वधर्माचरण, स्वाध्याय, त्याग, तपस्या, इष्टापूर्त, दक्षिणा आदि किसी उपाय के द्वारा उतनी सहजता से प्राप्त नहीं करते ।'

"जिनके मन-प्राण अन्तरात्मा ईश्वर में लीन हो गये हैं वे ही साधु हैं । वे कामिनी-कांचन के किसी रूप में आसक्त होकर नहीं रहेंगे । जो साधु हैं, वे स्त्रियों को सांसारिक दृष्टि से नहीं देखते । यदि नारियों के समीप आते हैं तो उन्हें मातृवत् देखते हैं और पूजा करते हैं । सच्चे त्यागी साधु अर्थ, यश कुछ नहीं चाहते । साधु सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करते हैं । ईश्वर की कथा छोड़कर दूसरी बात नहीं करते । और सभी जीवों में ईश्वर हैं, ऐसा जानकर उनकी सेवा करते हैं । मोटे तौर पर ये ही साधु के लक्षण हैं ।"

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥३९॥

तु (किन्तु) महत्संगः (महापुरुष का संग-लाभ) दुर्लभः (दुर्लभ) अगम्यः (अबोध्य) च (एवं) अमोघः (अव्यर्थ, फल प्रद) ॥३९

किन्तु साधु-संग दुर्लभ है, साधु को पहचान पाना भी कठिन है, तथा साधु-संग का लाभ होने पर उसका फल अमोघ है ॥ ३९

प्रकृत साधु पुरुष की संगति का लाभ सहज ही नहीं मिलता । भाग्य से किसी साधु-पुरुष की संगति का सुयोग मिलने पर भी उनका भाव, चाल-चलन, साधना, अपने मन के अनुरुप नहीं होने से उन्हें संभवतः समझ नहीं पाते; अपने मन की मलिनता के कारण नहीं भी पहचान सकते, श्रद्धा के बदले उनके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है । वे सहज ही अपने को पकड़ में आने नहीं देते । किन्तु, ईश्वर की कृपा से यदि साधु-संग की प्राप्ति हो और साधु के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो तो उस संग का फल व्यर्थ नहीं होता । तुरत उस संग के प्रभाव का संभवतः अनुभव न भी हो पाता है—तथापि, एक न एक दिन उसका सुफल फलित होगा ही—अन्तर की सारी मलिनताएँ दूर होंगी—हृदय भगवत्प्रेम से पूर्ण होगा ।

"जैसे किसी अपरिचित स्थान में जाने के लिए जो उस स्थान से परिचित है, ऐसे किसी एक आदमी की बात पर चलना पड़ता है, अनेक व्यक्तियों से जिज्ञासा करने पर रास्ते में गड़बड़ी हो जाती है, उसी प्रकार ईश्वर के

समीप जाने के लिए गुरु की बात पर चलना पड़ता है। इसीलिए गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के वचन पर विश्वास करना होता है। उनके वाक्य का अवलम्बन करना होता है; उनके वाक्यरूपी खूँटे को पकड़कर संसार के कार्य करने पड़ते हैं।"

"सच्चिदानन्द ही गुरु हैं। वे ही शिक्षा देंगे। सभी गुरु होना चाहते हैं; शिष्य कोई होना चाहता नहीं। लोक शिक्षा देना बड़ा कठिन है। वे यदि दर्शन देकर आदेश दें, तभी हो पाता है।.....ईश्वर-लाभ होने पर अन्तर्दृष्टि खुल जाती है, किसको क्या रोग है यह जाना जाता है, तब ठीक-ठीक उपदेश दिया जाता है। आदेश नहीं होने पर 'मैं लोक-शिक्षा देता हूँ—यह अहंकार होता है।"

"सद्गुरु से उपदेश लेना होगा। सद्गुरु का लक्षण है। जिसे संसार की अनित्यता का बोध नहीं हुआ' उससे उपदेश लेना उचित नहीं।....."

"गुरु के उपदेशानुसार चलने पर सब को मुक्ति होगी। यदि कोई टेढ़े रास्ते जाय, तो उसे फिर लौट कर आने में कष्ट होगा, उसे काफी देर से मुक्ति मिलेगी। संभवतः अनेक जन्मों बाद होगी। गुरु से संधान कर लेना होगा।"

"यदि सद्गुरु हो, तो जीव का अहंकार तीन पुकार में ही दूर हो जाता है। कच्चा गुरु होने पर गुरु को भी पीड़ा, शिष्य को भी पीड़ा। शिष्य का अहंकार मिटता नहीं, संसार-बंधन कटता नहीं। कच्चे गुरु के पल्ले पड़ने पर शिष्य फिर मुक्त नहीं होता।"

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥ ४० ॥

तत्कृपया एव (भगवान की कृपा होते ही) [महापुरुष का संग] लभ्यते अपि (लाभ भी हो जाता है) ॥४०

भगवान की कृपा होते ही साधुसंग का लाभ हो जाता है ॥४०

सत्संग का लाभ भी ईश्वर की कृपा के बिना नहीं मिलता। गुरु के माध्यम से ही ईश्वर कृपा करते हैं।

"यदि किसी को ठीक-ठीक अनुराग होता है और साधन-भजन की प्रयोजनीयता मन में जगती है, तो ऐसा होने पर निश्चय ही प्रभु उसे सद्गुरु उपलब्ध करा देते हैं।"

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥ ४१ ॥

तस्मिन् (भगवान में) तज्जने (उनके अनुगत भक्तों के बीच) भेदाभावात् (भेद नहीं होता है) ॥ ४१

भक्त और भगवान में भेद नहीं है अतः भक्त की कृपा पाने पर उनकी (ईश्वर की) ही कृपा प्राप्ति होती है। ॥ ४१

भागवत, भक्त, भगवान—तीनों एक हैं, एक ही तीन हैं। भक्त में प्रभु का प्रकाश देखकर ही तो उन्हें पाने का आकर्षण होता है! अनजाने, अनचीन्हें प्रेमास्पद का आभास केवल भक्त के हृदय में ही मिलता है।

"भक्त भगवान को चाहते हैं, और भगवान भक्त को चाहते हैं। जिस प्रकार भक्त भगवान के बिना नहीं रह पाते, उसी प्रकार भगवान भी भक्त के बिना नहीं रह पाते। तब भक्त हैं रस, भगवान हैं रसिक। वे रस का पान करते हैं। भक्त हैं पद्म, और भगवान हैं भ्रमर। वे भक्त-पद्म के मधु का पान करते हैं। वे अपने माधुर्य का आस्वादन करने के लिए दो हो गये हैं। इसी से राधा-कृष्ण की लीला है। भागवत' भक्त और भगवान—तीनों एक हैं, एक तीनों हैं। वे सर्वभूतों में हैं, किन्तु भक्त के हृदय में विशेष रूप से हैं, भक्त का हृदय उनका आवास स्थल है।.....ऐसा है कि भगवान से भक्त बड़े हैं—क्योंकि भक्त भगवान को हृदय से धारण कर रहते हैं।"

"भक्त को भी एकाकार का ज्ञान होता है वह देखता है कि भगवान ही सब हो गये हैं। ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। पक्की भक्ति जब होती है, तब इसी प्रकार बोध होता है। काफी पित्त जमने से जब पाण्डु रोग हो जाता है तब सब पीला ही दीखता है। तिलचट्टा दीमट के कीड़े का ध्यान करते-करते निश्चल हो जाता है और बाद में दीवट का कीड़ा ही हो जाता है। तिलचट्टा जब दीवट का कीड़ा हो जाता है तब सब हो गया। तभी मुक्ति। श्रीमती राधा श्याम

का चिन्तन करते-करते समस्त श्याममय देखने लगीं; और स्वयं को भी श्याम समझने लगीं । शीशे को यदि कई दिनों तक पारा में रख दो, तो वह भी पारा हो जाता है । भक्त भी उनका चिन्तन करते-करते अहं-शून्य हो जाता है । फिर देखता है, 'वे ही मैं हैं, मैं ही वे हूँ ।' जो जिसका चिन्तन करता है वह उसका स्वरूप पाता है ।"

भगवान को छोड़कर भक्त रह नहीं पाते, और भगवान भी भक्त को छोड़कर नहीं रहते । भगवान श्री कृष्णा दुर्वासा ऋषि को कहते हैं--

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

भा० ९।४।६३

साधवो हृदयं मह्यं साधुनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

भा० ९।४।६८

'मैं भक्त के अधीन हूँ अतः पराधीन हूँ । मुझे थोड़ी भी स्वाधीनता नहीं है । साधु और भक्तजनों ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है । मैं भक्तों का प्रिय हूँ, भक्त मेरे प्रिय हैं ।...मेरा प्रेमी भक्त मेरा हृदय है, और मैं साधु-भक्त का हृदय हूँ । मेरे अतिरिक्त वे और कुछ नहीं जानते और मैं भी उन सब के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता ।'

तदेव साध्यताम् तदेव साध्यताम् ॥ ४२ ॥

[अतएव] तत् एवं (इस सत्संग की ही) साध्यताम् (साधना करो), तत् एवं (इस साधु-संगति की ही) साध्यताम् (साधना करो) ॥४२

साधु-संग का जब ऐसा अशेष माहात्म्य है तब साधु-संगति की ही साधना करो ॥४२

पिछले कई सूत्रों में सत्संग के असाधारण प्रभाव की बात कहकर भक्त और भगवान में भेद नहीं है, यह बात भी महर्षि नारद ने कही है; अब सत्संग के लिए सदैव चेष्टा करने को उचित कहकर इस प्रसंग का वे उपसंहार करते हैं ।

भगवान की अपार करुणा, उनकी अपरूप लीला माधुरी का प्रकाश हमलोग प्रेमी भक्तों में ही पाते हैं । यथार्थ साधु की संगति मिलने पर संसार की समस्त दुःख-ज्वाला चली जाती है, प्रेम की विलय-ज्योति से हृदय का समस्त अंधकार दूर हो जाता है । इसीसे वे कहते हैं, यथार्थ साधु-संग की प्राप्ति के लिए चेष्टा करो । साधु-संग होता है भक्त और भगवान के बीच योग-सूत्र ।

"गुरु जैसे सखी है—जबतक श्रीकृष्ण के साथ श्री राधा का मिलन नहीं होता, तब तक सखी के काम में विराम नहीं है, उसी प्रकार जबतक इष्ट के साथ साधक का मिलन नहीं होता, तब तक गुरु के कार्य का अंत नहीं है । अंत में शिष्य को इष्टमूर्ति के सामने लाकर गुरु कहते हैं, 'हे शिष्य, यह देखो'—ऐसा कहकर गुरु चले जाते हैं । बाद में मन ही गुरु हो जाता है अथवा गुरु का कार्य करता है ।"

"यदि कोई व्यक्ति गुरुरूप में चैतन्य प्रदान करता है तो समझना कि सच्चिदानन्द ने ही यह रूप धारण किया है । गुरु पंडा की भाँति हाथ पकड़कर ले जाते हैं ।"

इस सूत्र का अन्य प्रकार का भी अर्थ है । भक्ति की ही साधना करो, भक्ति की ही साधना करो । "ईश्वर में यदि शुद्धा भक्ति नहीं हो, तो कोई गाते नहीं ।" भक्ति से जब सहज ही इष्ट-प्राप्ति होती है—पराभक्ति की प्राप्ति और ईश्वर को पाना जब एक ही बात है—तब और सब कुछ छोड़कर भक्ति की ही साधना करो । प्रेम का स्वाद जितना मिलेगा उतनी ही आस्वादन की आकांक्षा बढ़ेगी—इस आनन्द का अंत नहीं है । इसी से कहते हैं, सर्वदा साधना में लगे रहो । थोड़े में तृप्त नहीं होओ । "आगे बढ़ो ।" ।

"मैं एक बार म्यूजियम में गया था; वहाँ दिखाया ईंट पत्थर हो गयी है, पशु पत्थर हो गये हैं । देखो, संग का क्या गुण है ! इसी प्रकार सर्वदा साधु-संग करने से वही हो जाता है ।" ◻

साधना के अनिवार्य अंग

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

हम बाहरी वस्तुओं के बारे में जानने की चेष्टा करते हैं पर अपने बारे में कभी भी नहीं सोचते। ये बाह्य वस्तुएँ खिलौनों के समान हैं जिनसे व्यक्ति ऊब जाता है। एक अवस्था आती है जब जीव आत्म-साक्षात्कार के लिये व्यग्र हो उठता है। छान्दोग्योपनिषद में नारद की कथा है जो अनेक शास्त्र, मंत्र आदि का अध्ययन करने पर भी सुखी नहीं हो पाये। सभी मौलिक सुख स्वच्छन्दों के बावजूद एक अभाव, एक असन्तोष बना रहता है। कम उम्र में यह भूख होना एक वरदान है। तब व्यक्ति साधना अंगीकार करता है।

क्षुधातुर व्यक्ति की तरह हमें भगवान के लिये आतुर होना चाहिये। जाने-अनजाने हम शान्ति के लिये उस असीम में पुनः अवस्थित हो अकर्म की प्राप्ति के लिये लालायित रहते हैं। लोग अपने दुःखों से छुटकारा पाने के लिये भगवान को चाहते हैं। यह एक नकारात्मक दृष्टिकोण है। कर्म करते समय भगवन् स्मरण करो। मन को अच्छी तरह तैयार करके उन्हें पुकारो। संसार में शान्ति प्राप्त करने का यही एकमात्र उपाय है। अपने ध्यान को श्रेष्टतर बनाने का प्रयत्न करो। क्षुधातुर होने पर क्या तुम भोजन के आसन पर आधे घंटे तक प्रतीक्षा करते बैठे रहते हो? निश्चय ही नहीं। तुममें रुकने का धैर्य ही न होगा। इसी तरह ध्यान के लिये सारे दिन मन को तैयार करो। आध्यात्मिक आहार के लिये क्षुधातुर होओ। साधना के लिये महान क्षुधा पैदा करो। जब भी भगवान को पुकारो, आन्तरिकता से, पूरे मन से पुकारो, भले ही वह थोड़े समय के लिये ही क्यों न हो।

हम आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ परमात्मा के सगुण-साकार रूप के ध्यान से करते हैं। दुर्बल व्यक्ति इस धारणा से सन्तुष्ट रहते हैं। वे उन लोगों के समान हैं जो तलधर में ही रहते हैं तथा सीढ़ी चढ़ने का कष्ट उठाना नहीं चाहते। तुम्हें छत तक पहुँचने के लिये कठिन परिश्रम करना चाहिये जहाँ सूर्य का प्रकाश व शुद्ध हवा है। साकार ईश्वर की धारणा से प्रारंभ कर हमें निर्गुण ब्रह्म में अपने को विलीन कर देने की महत्वाकांक्षा रखनी चाहिये। व्यष्टि भी है, और समष्टि भी। एक विराट मन है। इसी प्रकार हमारी आत्माओं की आत्मा, परमात्मा भी है। परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है। सतत अभ्यास और वैराग्य के अतिरिक्त इस लक्ष्य की प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

जीवन की एक अवस्था होती है जब व्यक्ति सांसारिकता में डूबा रहता है, तथा सांसारिक लक्ष्यों की प्राप्ति को जीवन का सर्वोच्च प्रयोजन समझता है। जब इस प्रकार के जीवन से शान्ति नहीं मिलती तब मन में संशय पैदा होता है: "क्या मैं हाड़-माँस से निर्मित देह मात्र हूँ या विचारों और भावनाओं का एक आवर्त-मात्र हूँ? नहीं, मुझमें ऐसा भी कुछ है जो अनन्त है, तथा शरीर व मन के परिवर्तनों के बीच अपरिवर्तित बना रहता है।" तब उस अपरिवर्तन-शील अवस्था

को जानने के लिये व्यक्ति व्यग्र हो उठता है। चरमावस्था की प्राप्ति तक यह व्यग्रता बनी रहती है।

कुछ साधक कहते हैं, स्वामीजी पहले हम शान्ति में थे, अब वह सब चली गयी है।" वस्तुतः यह एक शुभ लक्षण है। ऐसी व्याकुलता से ही आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता है। और यही भगवत्-कृपा है। यह व्याकुलता हमें भगवान की ओर ले जा रही है या नहीं, इस बात पर निगाह रखना चाहिये।

ईश्वर साक्षात्कार के लिये होने वाली व्याकुलता तो अत्यन्त सौभाग्य की बात है। किन्तु यह बहुत दुर्लभ है। हम भावुकता को ही सच्ची व्याकुलता समझ बैठने की गलती कर सकते हैं। अतः हमें सदा सावधान रहना चाहिये जिससे भावुक-उच्छ्वासों को ईश्वर साक्षात्कार के लिये सच्ची व्याकुलता न समझ बैठें।

साधना में रूचि अचानक नहीं उपजती। इसके लिये कठोर परिश्रम करना पड़ता है। सारी शक्ति साधना में ही लगा देना चाहिये। कुछ समय बाद प्रगति दिखाई देगी, पर इससे सन्तुष्ट मत होओ। लक्ष्य प्राप्त न होने तक जलता हुआ असन्तोष बनाये रखो। "माँ एक दिन और बीत गया और मैंने तुझे नहीं देखा श्रीरामकृष्ण की यह प्रार्थना सच्ची आध्यात्मिक व्याकुलता प्रदर्शित करती है।

मुमुक्षुत्व, सत्संग तथा साधना के लिये शक्ति—ये भगवत् कृपा से प्राप्त होते हैं। कृपा की परिसमाप्ति मुक्ति में होती है। हम मेघों को हटाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मेघों के हल्के होने पर, कुछ छटने पर थोड़ा प्रकाश दिखाई देता है। सत्य की कुछ झलक मिलने पर हमें अधिकाधिक आलोक प्राप्त करने का उत्साह होगा और अन्त में हमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा।

एक गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"मैंने नहीं चाहा तुम्हें, तुमने ही आभागे को चाहा है,
मेरे बिना पुकारे प्रभु, हृदय में स्वयं को पुकारा है।"

भगवान ही हमें उनकी ओर आकर्षित करता है। वस्तुतः भगवान की झलक पाने के बाद आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता है। तब तक हम प्रारंभिक अवस्था में ही रहते हैं। हम सदा अनन्त के साथ एक हो जाना चाहते हैं। क्यों? अनन्त के बिना सान्त नहीं हो सकता। भगवान हमारे व्यक्तित्वों का आधार तथा वास्तविक सत्ता है। लेकिन बुदबुदा सागर को भूलकर सर्वदा अपने को ही महत्व देता है जबकि सागर के बिना उसका अस्तित्व हो संभव नहीं है।

(२) बल

आध्यात्मिक जीवन में दुर्बलता का कोई स्थान नहीं है। गीता में हम पाते हैं कि अर्जुन प्रारंभ में निराश हो गया था। भगवान ने उसे दुर्बलता त्याग कर उठने की सलाह दी। "दुर्बलता तुझे शोभा नहीं देती"—भगवान ने गीता में यह कहा है। भगवान ने लक्ष्य प्राप्ति के लिये विभिन्न योग-मार्गों का उपदेश गीता में दिया है।

ईश्वर साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति सभी दुर्बलताओं के पार चला जाता है। शक्ति व आनन्द के उस स्रोत तक पहुँचने के प्रयासों में नियमित दैनन्दिन ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्यान में हम उस आनन्द की एक झलक पाते हैं, और वह झलक हमें शान्ति और सुख प्रदान करती है।

धर्म दुर्बलों के लिये नहीं है। आध्यात्मिक जीवन के लिये शारीरिक व मानसिक, दोनों बल आवश्यक हैं।

शारीरिक बल का अर्थ हाथी के बल से नहीं है। हममें निरंतर लम्बे समय तक साधना करने के लिये पर्याप्त मात्रा में शारीरिक शक्ति होनी चाहिये। एक दुर्बल, थका-मांदा शरीर ध्यान के उपयुक्त नहीं है। शारीरिक दुर्बलता होने पर साधना में अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। ऐसे में, कमर में दर्द, सिर चकराना, आदि व्यवधान पैदा होंगे।

साधना में निम्न-प्रकृति तथा उच्च प्रकृति के बीच सदा खींचतान चलती रहेगी। इन संघर्षों तथा तनावों को सहन करने के लिये मानसिक शक्ति परमावश्यक है। मानसिक शक्ति से हिटलर की सी मानसिक शक्ति नहीं समझना चाहिये। सभी परिस्थितियों में मन का सन्तुलन बनाये रखने की क्षमता मानसिक शक्ति कहलाती है।

इन दोनों की सहायता से हमें आध्यात्मिक शक्ति विकसित करनी चाहिये। निरंतर ध्यान व जप के अभ्यास से हमें आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। जिसमें ये तीनों सही अनुपात में होते हैं, वह साधना में सिद्धि-लाभ करता है। अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ भी योग्यतम व्यक्ति अन्त में सफल होता है। कहा जाता है कि स्पार्त नामक जाति के लोग बच्चों की शक्ति की परीक्षा करने के लिये उन्हें एक पहाड़ी से फेंकते थे और जो बच्चा जीवित बचता था उसे योग्यतम नागरिक समझा जाता था। भाग्यवश आध्यात्मिक जीवन में किसी की इस प्रकार परीक्षा नहीं ली जाती। लेकिन जो साधक अन्त तक लगे रहेंगे वे लाभान्वित होंगे, और बीच में ही छोड़ देने वाले इस जीवन से हटा दिये जायेंगे। श्रीकृष्ण ने गीता में इसी भाव को "मनुष्याणां सहस्रेषु···" इत्यादि में व्यक्त किया है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में शक्ति आवश्यक है। संसार में भी यह देखा जाता है कि धनवान दुर्बल को प्रताड़ित करता है तथा मनोबल सम्पन्न व्यक्ति मानसिक दुर्बलता वाले व्यक्ति का शोषण करता है। सांसारिक क्षेत्र में सफलता के लिये शक्ति इतनी आवश्यक है, तो आध्यात्मिक क्षेत्र में तब वह कहीं अधिक आवश्यक है।

अतः बलवान् होओ, और सतत संघर्ष करते रहो। संघर्ष ! संघर्ष !! संघर्ष !!!

देह की अवज्ञा नहीं करना चाहिये। उसे स्वस्थ और समर्थ बनाये रखना चाहिये। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों की समान रूप से देखभाल करना चाहिये। भावना चिन्तन व क्रिया, इन तीनों में समन्वय होना चाहिये।

एक और प्रसिद्ध प्रार्थना है—

"ओम आप्यायन्तु ममांगानि। वाक्प्राणः चक्षुः श्रोयमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।"

अर्थात्, मेरे-अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कर्ण आदि सभी इन्द्रियाँ सबल होवें। यह प्रार्थना शरीर और मन को पूरा-पूरा महत्व देकर सबल और समर्थ बनाये रखने की आवश्यकता को भलिभांति व्यक्त करती है, जिससे कि वे ईश्वर-साक्षात्कार रूपी उद्देश्य की पूर्ति में लगाये जा सकें।

रिपोर्ताज

रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन : एक परिचर्चा

—डॉ केदारनाथ लाभ, डी० लिट्

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के पिछले कई दिनों के प्रयत्न, एवं परियोजना के फलस्वरूप गत १५ एवं १६ सितम्बर को रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन के गहन अध्ययन पर एक परिचर्चा हुई । पटने के नागरिकों, बुद्धिजीवियों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संचेतना से युक्त मनीषियों ने इस संगोष्ठी में सहकार कर इसे एक सर्वथा स्मरणीय एवं प्रेरक स्वरूप प्रदान कर दिया ।

इस संगोष्ठी में प्रो० निमाई साधन बसु, प्रो० सुश्री सांत्वना दास गुप्ता, कलकत्ता, प्रो० वीरेश्वर गांगुली, पूर्व अध्यक्ष, अर्थशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, प्रो० डॉ० जगदीश चन्द्र झा, इतिहास विभाग पटना विश्वविद्यालय, डॉ० सरोजिनी शरण, प्रो० बी. पी. मजुमदार, डॉ० विष्णु अनुग्रह नारायण, डॉ० अरुणा हलदर, श्री गोपाल हलधर, कलकत्ता, श्री शिवसती प्रसाद; अधिवक्ता, प्रो० विमलेश्वर डे, प्रो० जे. एन. चटर्जी, प्रो० एस. एन. दास, डॉ० रामजी सिंह, डॉ० विनयानन्द दास, प्रो० राधाकृष्ण चौधरी जैसे प्रख्यात चिन्तकों एवं विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों ने भाग लेकर इस परिचर्चा को एक विलक्षण गरिमा एवं ऐतिहासिक छवि प्रदान की ।

विभिन्न गोष्ठियों की अध्यक्षता श्री संधवालिया, मुख्य न्यायाधीश, पटना उच्च न्यायालय, श्रीकृष्ण वल्लभ नारायण सिंह, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, पटना एवं मद्रास उच्च न्यायालय, डॉ० गणेश प्रसाद सिन्हा, कुलपति, पटना विश्वविद्यालय, श्री आर. श्री निवासन, आइ. ए. एस. आयुक्त वन विभाग, बिहार सरकार, तथा आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा पूर्व कुलपति, पटना विश्वविद्यालय एवं कामेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा ने की । स्वभावतः परिचर्चा में विचारों का स्तर जितना ही ऊँचा, गंभीर, व्यापक और प्रेरणादायक था उतना ही मननीय एवं हृदयावर्जक भी था ।

परिचर्चा का उद्घाटन समारोह आयोजित हुआ रवीन्द्र भवन में १५ सितम्बर को १० बजे दिन में । इस भव्यभवन के मंच पर एक कोने में हरे-भरे पौधों से युक्त गमलों के बीच उच्च आसन पर पुष्प मालाओं से सज्जित श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की तस्वीरें प्रतिष्ठित थीं । अगरू-धूम से सारा वातावरण तपः पूत हो रहा था । बिहार के कई प्रमुख नगरों के प्रबुद्ध नर-नारियों से सारा हाल भर गया था । मंच पर आसीन थे श्री नन्दलाल ऊँटवालिया, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, पटना उच्च न्यायालय, श्री संधवालिया, श्री किदवई, राज्यपाल, बिहार, स्वामी वेदान्तानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम पटना और प्रो० निमाई साधन बसु, सचिव, अंतर्राष्ट्रीय रामकृष्ण विवेकानन्द आन्दोलन अध्ययन-समिति, कलकत्ता ।

परिचर्चा-गोष्ठी का उद्घाटन किया राज्यपाल श्री किदवई ने । उन्होंने श्रीरामकृष्ण की धर्म-साधनाओं पर प्रकाश डाला और कहा कि वर्तमान भारत को सुख, शान्ति और प्रगति पुरस्सर होने के लिए श्रीरामकृष्ण के आदर्शों का अनुकरण करना ही होगा ।

प्रो० श्री निमाई साधन बसु ने इस आन्दोलन की रूप-रेखा पर प्रकाश डालते हुए बताया कि आज रूस और चीन जैसे देशों में भी विवेकानन्द के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित किया जाने लगा है और उनके विचारों का अध्ययन वहाँ के लोग रुचि पूर्वक करने लगे हैं ।

अपने अध्यक्षीय भाषण में न्यायमूर्ति संधवालिया ने श्रीरामकृष्ण के व्यापक दृष्टिकोण की चर्चा की और कहा

कि उनके सर्व-धर्म-समभाव के विचार के प्रचार की आज जितनी आवश्यकता है, वैसी पहले नहीं थी। राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिए यह आवश्यक है।

मिशन के छात्रों द्वारा सस्वर वेद-पाठ से गोष्ठी का आरंभ हुआ था और श्री नन्द लाल ऊँटवालिया के स्वागत भाषण ने रामकृष्ण आन्दोलन में विहार की भूमिका को उजागर कर श्रोताओं को विस्मय विमुग्ध कर दिया था।

१५ सितम्बर को ही दूसरे सत्र में, जिसका आयोजन रामकृष्ण मिशन आश्रम के सभा कक्ष में हुआ, "राम-कृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन; भारतीय धर्म-निरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता," "स्वामी विवेकानन्द और समाज वाद तथा स्वामी विवेकानन्द की विश्व-व्यापकता" विषयों पर गंभीर परिचर्चा हुई। इस सत्र की अध्यक्षता की श्री कृष्ण बल्लभ नारायण सिंह ने। चर्चा में भाग लेते हुए डॉ० जगदीश चन्द्र झा ने स्वामी विवेकानन्द को एक समाजवादी ऋषि बताया। प्रो० सांत्वना दास गुप्ता ने समाजवाद के सिद्धान्तों की चर्चा कर स्वामी जी को एक वैज्ञानिक समाजवादी सिद्ध किया और कहा कि विवेकानन्द की ऐतिहासिक दृष्टि उतनी ही वैज्ञानिक थी जितनी मार्क्स या एंजिल्स की इसी गोष्ठी में प्रो० विरेश्वर गांगुली और डॉ० सरोजिनी शरण ने अपने सुचिंतित विचारों से श्रोताओं को चिंतनशीलता की ओर मोड़ दिया।

श्रीकृष्ण वल्लभ नारायण सिंह ने अध्यक्षीय भाषण में बताया कि धर्म धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त का धिरोधी नहीं है। संविधान में सेक्युलरिज्म की परिभाषा साफ है। यहाँ राज्य व्यक्ति के धर्माचरण में बाधा नहीं डाल सकता। लेकिन धर्म को भी संकीर्ण नहीं होकर उदार होना चाहिए। रामकृष्ण धर्म भी उदार चेतना की ही प्रतिमूर्ति थे।

इस सत्र का समापन ब्रह्मचारी शंभु चैतन्य के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

१६ सितम्बर को परिचर्चा के तीन सत्र हुए। प्रथम सत्र ९ से १२ बजे दिन तक। द्वितीय सत्र २ बजे से ५ बजे संध्या तक तथा तीसरा सत्र ६ से ९ बजे रात्रि तक। इस दिन के प्रथम सत्र की अध्यक्षता की डॉ. गणेश प्रसाद सिन्हा ने। प्रो. बी. पी. मजुमदार ने 'विवेकानन्द और लोक शिक्षा' पर अपने सार-गर्भ विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा पर जोर दिया, दयानन्द ने संस्कृत शिक्षा पर। लेकिन स्वामी विवेकानन्द ने अंग्रेजी के साथ ही लोक भाषा और संस्कृत की शिक्षा पर बल दिया। वे पहले संन्यासी थे जिन्होंने बालक और बालिकाओं के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों की ओर संकेत किया और शिक्षा को भारतीय परम्परा से जोड़ने पर बल दिया। उनके अनुसार ज्ञान और शरीर दोनों का बल आवश्यक है।

डॉ० विष्णु अनुग्रह नारायण ने "रामकृष्ण-विवेका नन्द और भारतीय नारीत्व विषय" पर अपना विसारोत्तेजक प्रबन्ध-पाठ किया। प्रो० राधाकृष्ण चौधरी और डॉ० रामजी सिंह ने आधुनिक युवकों के लिए स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता पर काफी सुचिंतित विचार प्रदान किये और बताया कि स्वामीजी के अनुसार युवकों को प्रेम, आशा, अभय के साथ ही ब्रह्मतेज और छात्रवीर्य का पालन करना चाहिए।

डॉ० गणेश प्रसाद सिन्हा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि रामकृष्ण और विवेकानन्द यद्यपि मूलतः आध्यात्मिक पुरुष थे तथापि वे अपने देश और समाज और विश्व की मानव जाति के जीवन को भी समुन्नत करना चाहते थे। वे व्यक्ति की मुक्ति में ही नहीं समाज की मुक्ति में भी विश्वास करते थे। १६ सितम्बर के दूसरे सत्र की अध्यक्षता की श्री आर. श्री निवासन, आइ. ए. एस. ने।

इस सत्र में डॉ० विमलेश्वर डे ने "विवेकानन्द और भारत में युक्तिवाद" पर गंभीरता से प्रकाश विकीर्ण किया और कहा कि स्वयं रामकृष्ण अंधविश्वास को नहीं मानते थे। गुरु और शिष्य दोनों ही तभी किसी वस्तु को स्वीकार करते थे जब वह तर्क और बुद्धि की कसौटी पर सही साबित हो जाती थी। अतः भारत को भावुकता से उठाकर बौद्धिकता के आसन पर इन

दोनों महापुरुषों ने प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

श्री गोपाल हलदर ने "रामकृष्ण विवेकानन्द आन्दोलन और भारतीय पुनर्जागरण" पर अपना प्रबंध पढ़ा। उन्होंने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की चर्चा कर उस प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जिसने १९ वीं शताब्दी के भारत को झकझोर दिया था और उस में विवेकानन्द की भूमिका की उन्होंने पांडित्य पूर्ण चर्चा की। उन्होंने प्रतिनिधियों से प्रश्न किया भारत के विकास के लिए विवेकानन्द से अधिक चिंतित और कोई व्यक्ति अब तक हुआ है ?

श्री शिवसती प्रसाद ने भी इसी विषय पर अपने विचार रखे और कहा कि स्वामीजी ने सम्पूर्ण भारत के उस धर्म की रक्षा की जो पतनशील होता जा रहा था।

डॉ० विनयानन्द दास ने भी उपर्युक्त विषय पर ही प्रकाश डाला। वे इस गोष्ठी में हिन्दी के प्रथम वक्ता थे।

प्रो० जे. एन. चटर्जी ने 'स्वामी विवेकानन्द और भारतीय वैज्ञानिक जगत' विषय पर बोलते हुए कहा कि यद्यपि विवेकानन्द पारिभाषित रूप में वैज्ञानिक नहीं थे किन्तु उनके विचार बड़े ही वैज्ञानिक और परीक्षण सिद्ध थे।

प्रो० एस. एन. दास ने भी उपर्युक्त विषय पर ही अपने विचार प्रस्तुत किये और कहा कि स्वामीजी ने जो कुछ कहा अनुभव के आधार पर कहा। यह 'अनुभव' ही विज्ञान की कसौटी है। और इस कसौटी पर स्वामी जी खरे उतरते हैं।

प्रो० हरि प्रसाद ने लोगों से अनुरोध किया कि वे वैज्ञानिकों की विधायक भूमिका पर ध्यान दें। भारत में विज्ञान को निर्माणात्मक ही होना होगा, ध्वंसात्मक नहीं। और विवेकानन्द निर्माण के ही संदेशवाहक थे।

अध्यक्षीय भाषण में श्री श्रीनिवासन ने कहा कि पुराने मूल्य टूट रहे हैं। नये मूल्य बन नहीं रहे हैं। हमारी समस्याएं व्यापक हैं। अतः आज धर्म को आध्यात्मिक और भौतिक दोनों समस्याओं की ओर ध्यान देना होगा। व्यक्ति की अच्छाई समाज की भी अच्छाई बने। और स्वामीजी ने इसी तथ्य पर जोर दिया था।

समापन सत्र की अध्यक्षता की आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा ने। वक्ता थे प्रो० निमाई साधन बसु और प्रो० सांत्वना दास गुप्ता। प्रो० बसु ने संगोष्ठी के सभी सत्रों के विचारों का सार-संक्षेप में प्रस्तुत किया और कहा कि केवल नक्सलवादी ही धर्म-विरोधी नहीं हैं। हम सब भी नक्सलवादी हैं क्योंकि हम स्वामीजी के विचारों का पालन नहीं करते और एक प्रतिमा का, इस प्रकार, भंजन ही करते हैं।

आचार्य शर्मा ने बड़े पांडित्यपूर्ण भाषा और ललित-पूर्ण शैली में धर्म की परिभाषा की और बताया कि धर्म-निरपेक्षता ढकोसला है। इसने हमें कर्तव्य-निरपेक्ष ही कर दिया है। यह राष्ट्र के लिए चिंतनीय विषय है। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द धर्म के बाहरी रूप को नहीं धर्म के मर्म को ही हमारे समक्ष रख गये हैं और आज जरूरत है कि हम उनके बताये मार्गों पर चलकर अपना, अपने धर्म और अपने देश का विकास करें। प्रो० हरि प्रसाद पूरी कार्यवाही का अभिलेखन करते रहे।

श्री नन्दलाल ऊँटवालिया के धन्यवाद ज्ञापन से इस ऐतिहासिक विचार गोष्ठी का समापन हुआ। श्रोताओं में एक वैचारिक अवदान पाया इस गोष्ठी में और मणिमाला में सूत्र की भाँति स्वामी वेदान्तानन्द ने आरंभ से अंत तक इस परिचर्चा के प्राण-तत्व बने रहकर इसे जीवंतता प्रदान की।

आरूढ़-च्युत

प्रस्तुति : सुरेश कुमार प्रशांत

घने जंगल में किसी पेड़ पर घोंसला बना कर एक कबूतर तथा कबूतरी रहते थे। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। एक की सांस दूसरे की धड़कन थी। उन्होंने एक दूसरे की दृष्टि से दृष्टि, अंग से अंग तथा बुद्धि से बुद्धि जोड़ ली थी। दिनानुदिन उनका प्रेम बढ़ता ही जाता था। प्रतिपल वे साथ ही रहते, खाते पीते, खेलते-बतियाते, घूमते-फिरते, उठते-बैठते तथा सोते। एक दूसरे की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने के लिये वे तत्पर रहते तथा इसके लिये बड़ा से बड़ा कष्ट भी उठाने को तैयार रहते।

कुछ समय बीतने पर कबूतरी गर्भवती हुई। उसने चार अंडे दिये। समय पर वे अंडे फूटे तथा उनमें से सुकुमार अंगों तथा कोमल रोएं से युक्त बच्चे निकल आये।

अब कबूतर-दम्पति की आँखें प्रतिक्षण उन बच्चों पर ही लगी रहती। उनको वे बहुत लाड़-प्यार करते, मीठी बोली बोलते, उन्हें बोलना सिखाते तथा भरसक अकेला नहीं छोड़ते। बच्चे भी सदा हँसते, भोली-भाली चेष्टाएँ करते, फुदक-फुदक कर माँ-बाप के पास आ जाते उनकी चोंच में अपनी लाल-कोमल चोंच डाल देते तथा अपने सुकुमार पंखों से उनका बदन सहलाते। कबूतर-दम्पति उनकी गुटर-गूँ तथा क्रीड़ाओं पर आनंद-मग्न हो सबकुछ भूल जाते। कब रात हुई, कब दिन उन्हें पता नहीं चलता। बच्चे ही मानो उनके लिये सारी दुनिया थे।

परिबार बढ़ गया था। अब ज्यादा चारे की जरूरत होने लगी। कबूतर-दम्पति साथ-साथ चारे के लिये घूमते हुए बहुत दूर-दूर तक निकल जाते। जरा भी देर होने पर वे बच्चों के लिये चिन्तित हो जाते। हारे-थके आने पर भी बच्चों को खूब प्यार करते तथा उनके कोमल पंखों का स्पर्श प्राप्त कर सारी थकावट भूल जाते।

एक दिन जब कबूतर-दम्पति दूर जंगल में चारे की खोज में परेशान थे, एक बहेलिया उस पेड़ के पास पहुँचा। घोंसले को देख उसने जाल बिछाकर दाने बिखेर दिये तथा स्वयं पेड़ के ओट हो गया। भूखे तथा अनुभव हीन चारो बच्चे दाने की लालच में जाल में बंध गये तथा दीन एवं आर्त्त होकर चें-चें करते छटपटाने लगे।

तभी कबूतर-दम्पति आ गये कबूतरी ने जब अपने प्राणों से प्यारे बच्चों को कातर एवं विवश भाव से छटपटाते देखा, तो उसका कलेजा मुँह को आ गया। वह उनसे मिलने से खुद को रोक नहीं सकी तथा उनके पास दौड़ी चली गई। उनको मुक्त करने के प्रयास में वह स्वयं भी उसी जाल में बंध गयी।

प्राण-तुल्य बच्चों तथा प्राणोपमा प्रिया को जाल में आबद्ध देखकर कबूतर रो पड़ा तथा विलाप करने लगा—हाय, मेरा तो सर्वनाश हो गया! न अभी मुझे पूर्ण सुख मिला, न मेरी कामनायें ही अभी तृप्त हुई! धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष का साधन मेरा गृहस्थाश्रम ही नष्ट हो गया! मेरी प्रिया मेरा कितना ख्याल करती थी। वह सब तरह से मेरे योग्य थी। आज वह मुझे कलपता छोड़ बच्चों के साथ स्वर्ग सिधार रही है। अब यह विधुर जीवन लेकर ही मैं क्या करूँगा? अब किसी के लिये जीना? अब रह ही क्या गया?—यह सब कहते हुए कबूतर अपनी प्रिया तथा बच्चों के सिर पर मंडराती मौत को भूल गया तथा उनको मौत के क्रूर पंजों से निकालने के लिये जाल की तरफ बढ़ा। वह तो अपनी सुध-बुध खो चुका था। जाल में वह भी फंस गया। क्रूर बहेलिये ने अति प्रसनन्ता पूर्वक उन छःओं को जाल से निकाल कर उनकी गर्दन को मरोड़ दी तथा उन्हें झोले में डाल, जाल समेट चलता बना।

सचमुच, जिनके लिये कुटुम्ब तक ही सारी दुनिया सीमित है, जो कुटुम्ब के भरण-पोषण में सुध-बुध गँवा चुके हैं, उसमें तथा उस मूर्ख कबूतर दम्पति में अंतर कहाँ है? ◻

बेलुड़ मठ में इन्दिरा गाँधी

बेलुड़ मठ, २६ अगस्त । रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण किशन के ९६ वर्षीय संन्यासी भरत महाराज (स्वामी अभयानन्द) के दर्शनार्थ एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के निमित्त प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी गत २६ अगस्त को बेलुड़ मठ पहुँची और भरत महाराज के पाँव छू कर प्रणामकर तथा उनका आशीर्वाद लेकर लौट गयीं। भरत महाराज अस्वस्थ थे। इसीसे उनका दर्शन करने वे आयी थीं रविवार की दोपहर को बेलुड़ मठ में। महाराज को देखते ही उन्होंने उद्वेगपूर्ण स्वर में पूछा—'आप अभी कैसे हैं स्वामी जी ?' फिर प्रधानमंत्री ने और भी कई बातें एकान्त में की प्रायः पच्चीस मिनटों तक। इन्दिराजी ने जाने के पूर्व प्रसाद ग्रहण किया।

इन्दिराजी पहले भी बेलुड़ आती रही हैं किन्तु इस बार वे आयी थीं बिल्कुल व्यक्तिगत यात्रा पर । वे ठीक १ बजकर ५ मिनट पर मठ में आयीं । उनकी गाड़ी मन्दिर के पीछे होकर आमतला के प्रांङ्गण में स्वामीजी के निवास-भवन के सामने रुकी । गाड़ी से उतरकर तड़-तड़ कर वे सीढ़ी पर चढ़कर दोतल्ले के ऊपर पहुँच गयीं। गंगा की ओर बालकनी में कुर्सी पर बैठे हुए अस्वस्थ संन्यासी भरत महाराज उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। प्रधानमंत्री ने यहाँ आकर उन्हें प्रणाम किया और महाराज के शरीर की वर्तमान अवस्था के सम्बन्ध में विशेष पूछताछ की । भरत महाराज ने भी जिज्ञासा की —'इन्दिरा कैसी हो ?'

उस दिन इन्दिराजी ने पहन रखी थी गाढ़े सब्ज रंग की किनारी वाली गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी। बेलुड़ मठ में प्रवेश करते ही उन्होंने अपने माथे का घूँघट कुछ और अधिक खींच लिया । क्रीम रंग की गाड़ी से उद्विग्नभाव से उतरकर वे सीधे दो मंजिले मकान पर चली गयीं। वहाँ पुत्री-समान इन्दिरा को देखने के लिए अस्वस्थ शरीर लेकर प्रतीक्षा कर रहे थे ९६ वर्षीय वृद्ध संन्यासी भरत महाराज।

बेलुड़ मठ की ओर से प्रधानमंत्री को एक छोटा पीतल का घड़ा, कुछ अगरबत्तियाँ के पैकेट, साड़ी, बैग और पुस्तकें उपहार स्वरूप भेंट की गयीं। भरत महाराज ने स्वयं ये वस्तुएँ लेकर दीं । इन्दिराजी ने सहासमुख से सारी चीजें लीं और वहाँ उपस्थित श्रीसारदा प्रसाद से कहा—'गाड़ी में रख दीजिए।' पुस्तक दो खंडों में थी जिसका नाम था—'निउ डिसकवरीज रिगार्डिङ्ग स्वामी विवेकानन्द।, लेखिका हैं—मेरी लुइस वर्क अथवा बहन गार्गी । उपहार में दी गयी अन्य वस्तुएँ मठ की कामारपुकुर और जयरामबाटी शाखाओं की कर्मशाला में तैयार की गयी थीं।

भरत महाराज का दर्शनकर लौटने के पूर्व इन्दिराजी को प्रसाद दिया गया—भात, दाल, अनेक प्रकार के व्यंजन, भुजिया, पापड़, पायस, घोल, सन्देश और फल भोजन की व्यवस्था स्वामीजी के दो मंजिले पर ही हुई थी। श्रीमती गाँधी ने प्रायः सब कुछ थोड़ा-थोड़ा खाया। भोजन के अंत में, पास ही बैठे भरत महाराज ने कहा—'इन्दिरा, एक मिठाई और खाओ'। इन्दिराजी ने एक मिठाई और खायी। भोजन की टेबुल के निकट स्वामी गहनानन्द, स्वामी वन्दनानंद, स्वामीआत्मस्थानंद, स्वामी सत्यात्मानन्द आदि उपस्थित होकर व्यवस्था कर रहे थे।

रामकृष्ण मिशन और बेलुड़ मठ के संन्यासी स्वामी

वन्दनानन्द ने इस विशेष साक्षात्कार की व्यवस्था की थी। वार्धक्य और साटिका की बीमारी से अस्वस्थ होने पर भी भरत महाराज ने संवाददाताओं से धीरे-धीरे बातचीत की।

प्रशान्त भरत महाराज ने कहा—'इन्दिरा ने पहले ही मुझे सूचित कर दिया था कि वह मुझे देखने आयेगी। व्यक्तिगत भाव से ही वह आयी थी। हम दोनों ने कुशल-वार्ता की। राजनीति की कोई बात नहीं हुई। हाँ, सारी बातें नहीं बतायी जा सकती।' भरत महाराज ने कहा—'इन्दिरा के साथ प्रायः तीन वर्षों के बाद भेंट हुई है। हमलोगों के बीच नियमित कुशल क्षेम होता रहता है। बहुत दिनों से उसे घनिष्ट रूप से पहचानता हूँ। इन्दिरा मेरी पुत्री की भाँति है। मैं उसे काफी स्नेह करता हूँ। पहले उसे केवल 'इन्दु' कहता था अब इंन्दिरा कहता हूँ। इन्दिरा मुझे कभी 'स्वामीजी' और कभी 'महाराज' कहती है।

भरत महाराज से एकान्त में बातें करने के पूर्व इन्दिराजी ने महाराज को सूचना एवं प्रसारण मंत्री हरिकिशन लाल भगत का परिचय दिया। भरत महाराज को साक्षात्कार करने पर भी प्रधान मंत्री उस दिन बेलुड़ मठ के मन्दिर का दर्शन नहीं कर सकीं क्योंकि उनके यहाँ आने के पहले ही मन्दिर का दरबाजा बन्द हो गया था। प्रधान मंत्री १ घंटा देर से आयीं। पहले यहाँ १ घंटा उन्हें रहना था किन्तु विलम्ब के कारण २५ मिनट ही रूकी। जमशेदपुर से वे निश्चय ही विलम्ब से नहीं पहुँची। पहले तय था कि हेलिकोप्टर से वे सीधे बेलुड़ मठ के प्रांगण में उतरेंगी। किन्तु शनिवार की रात में प्रबल वृष्टि होने के कारण प्राङ्गण में कीचड़ हो गया था। फलतः विमान हवाई अड्डे पर रुका जहाँ से आने में प्रायः डेढ़ घंटे का समय लग गया।

शैक्षणिक-प्रदर्शनी

देवघर ८ सितम्बर। बिहार राज्य के शिक्षा आयुक्त श्री अरुण पाठक ने गत ३१ अगस्त को रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के तत्वावधान में आयोजित ४ दिवसीय शैक्षणिक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए कहा कि छात्र रामकृष्ण परमहंस के त्याग, समर्पण और अनुशासन के आदर्शों को अपने जीवन में अपनायें जिससे भविष्य में वे देश की समुचित सेवा कर सकें। उन्होंने इस बात पर प्रसन्ता व्यक्त भी कि इस विद्यापीठ में अध्ययन अध्यापन के साथ-साथ चरित्र-निर्माण पर भी यथेष्ट बल दिया जाता है।

इस अवसर पर विद्यापीठ के छात्रों ने आकर्षक शैक्षणिक प्रदर्शनी का आयोजन किया। प्रदर्शनी ३१ अगस्त से ३ सितम्बर तक चली। इसमें प्रायः १५० छात्रों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया।

आरम्भ में विद्यापीठ के सचिव स्वामी चन्द्रानन्द महाराज ने आगत अतिथियों का स्वागत किया और विद्यापीठ की गतिविधियों पर प्रकाश डाला।

जिस प्रकार समुद्र के भीतर छिपा हुआ चुम्बक का पहाड़ अपने ऊपर से किसी जहाज के गुजरते ही तुरन्त उसे खींच, उसके कल-पुर्जों को ढीला कर, पटियों को अलग-अलग कर पानी में डुबो देता है, उसी प्रकार ईश्वर रूपी चुम्बक का आकर्षण होने पर वह मनुष्य के अहंकार और स्वार्थ से पूर्ण जीवन को क्षण भर में तोड़-फोड़ कर ईश्वर के प्रेम-सागर में डुबो देता है ।

—श्रीरामकृष्ण

मंगल कामनाओं के साथ :

श्री मदन लाल रामजीवन

अपर बाजार

राँची

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है। —स्वामी विवेकानन्द

मंगल कामनाओं के साथ :

मंगला मेटल्स

मेटल कन्टेनर के निर्माता

एवम् जेनरल आर्डर सप्लायर्स

ए २, पत्रकार नगर,

कंकड़बाग कॉलोनी,

पटना—२०

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

MANGALA METALS

(Manufacturer of Metal Container and General Order Suppliers)

A 2, Patrakar Nagar,

Kankarbagh Colony,

PATNA—20